12096CH08

विषय आठ

किसान, ज़मींदार और राज्य

कृषि समाज और मुग़ल साम्राज्य (लगभग सोलहवीं और सत्रहवीं सदी)

चित्र 8.1
एक ग्रामीण दृश्य
सत्रहवीं शताब्दी के एक मुग़ल चित्र का ब्योरा

सोलहवीं-सत्रहवीं सदी के दौरान हिंदुस्तान में करीब-करीब 85 फ़ीसदी लोग गाँवों में रहते थे। छोटे खेतिहर और भूमिहर संभ्रांत दोनों ही कृषि उत्पादन से जुड़े थे और दोनों ही फ़सल के हिस्सों के दावेदार थे। इससे उनके बीच सहयोग, प्रतियोगिता और संघर्ष के रिश्ते बने। खेती से जुड़े इन तमाम रिश्तों के ताने-बाने से गाँव का समाज बनता था।

इसी समय कई बाहरी ताकतें भी ग्रामीण दुनिया में दाखिल हुईं। इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण मुग़ल राज्य था जो अपनी आमदनी का बहुत बड़ा हिस्सा कृषि उत्पादन से उगाहता था। राज्य के नुमाइंदे – राजस्व निर्धारित करने वाले, राजस्व वसूली करने वाले, हिसाब रखने वाले – ग्रामीण समाज पर काबू रखने की कोशिश करते थे। वे तसल्ली करना चाहते थे कि खेतों की जुताई हो और राज्य को उपज से अपने हिस्से का कर समय पर मिल जाए। चूँकि कई फ़सलें बिक्री के लिए उगाई जाती थीं, इसलिए व्यापार, मुद्रा और बाज़ार भी गाँवों में घुस आए और इससे खेती वाले इलाके शहर से जुड़ गए।

1. किसान और कृषि उत्पादन

खेतिहर समाज की बुनियादी इकाई गाँव थी जिसमें किसान रहते थे। किसान साल भर अलग-अलग मौसम में वो तमाम काम करते थे जिससे फ़सल की पैदावार होती थी – जैसे कि ज़मीन की जुताई, बीज बोना और फ़सल पकने पर उसकी कटाई। इसके अलावा वे उन वस्तुओं के उत्पादन में भी शरीक़ होते थे जो कृषि-आधारित थीं जैसे कि शक्कर, तेल इत्यादि।

लेकिन सिर्फ़ मैदानी इलाकों में बसे किसानों की खेती ही ग्रामीण भारत की ख़ासियत नहीं थी। कई ऐसे क्षेत्र भी थे – जैसे कि सूखी ज़मीन के विशाल हिस्सों से पहाड़ियों वाले इलाके – जहाँ उस तरह की खेती नहीं हो सकती थी जैसी कि ज़्यादा उपजाऊ ज़मीनों पर। इसके अलावा, भूखंड का एक बहुत बड़ा हिस्सा जंगलों से घिरा था। जब हम

© NCERT not to be republished

कृषि समाज की बात करते हैं तब हमें इन भौगोलिक विविधताओं का ख़्याल रखना चाहिए।

1.1 स्त्रोतों की तलाश

चूँकि किसान अपने बारे में खुद नहीं लिखा करते थे इसलिए ग्रामीण समाज के क्रियाकलापों की जानकारी हमें उन लोगों से नहीं मिलती जो खेतों में काम करते थे। नतीजतन, सोलहवीं और सत्रहवीं सदियों के कृषि इतिहास को समझने के लिए हमारे मुख्य स्त्रोत वे ऐतिहासिक ग्रंथ व दस्तावेज़ हैं जो मुग़ल दरबार की निगरानी में लिखे गए थे (देखिए अध्याय 9)।

सबसे महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक ग्रंथों में एक था *आइन-ए-अकबरी* (संक्षेप में *आइन*, देखिए अनुभाग 8) जिसे अकबर के दरबारी इतिहासकार अबुल फ़ज़्ल ने लिखा था। खेतों की नियमित जुताई की तसल्ली करने के लिए, राज्य के नुमाइंदों द्वारा करों की उगाही के लिए और राज्य व ग्रामीण सत्तापोशों यानी कि ज़मींदारों के बीच के रिश्तों के नियमन के लिए जो इंतज़ाम राज्य ने किए थे, उसका लेखा-जोखा इस ग्रंथ में बड़ी सावधानी से पेश किया गया है।

आइन का मुख्य उद्देश्य अकबर के सम्राज्य का एक ऐसा खाका पेश करना था जहाँ एक मज़बूत सत्ताधारी वर्ग सामाजिक मेल-जोल बना कर रखता था। *आइन* के लेखक के मुताबिक, मुग़ल राज्य के खिलाफ़ कोई बगावत या किसी भी किस्म की स्वायत्त सत्ता की दावेदारी का असफल होना पहले ही तय था। दूसरे शब्दों में, किसानों के बारे में जो कुछ हमें *आइन* से पता चलता है वह सत्ता के ऊँचे गलियारों का नज़रिया है।

खुशकिस्मती से *आइन* की जानकारी के साथ-साथ हम उन स्त्रोतों का भी इस्तेमाल कर सकते हैं जो मुग़लों की राजधानी से दूर के इलाकों में लिखे गए थे। इनमें सत्रहवीं व अठारहवीं सदियों के गुजरात, महाराष्ट्र और राजस्थान से मिलने वाले वे दस्तावेज़ शामिल हैं जो सरकार की आमदनी की विस्तृत जानकारी देते हैं। इसके अलावा, ईस्ट इंडिया कंपनी के बहुत सारे दस्तावेज़ भी हैं जो पूर्वी भारत में कृषि-संबंधों का उपयोगी खाका पेश करते हैं। ये सभी स्त्रोत किसानों, ज़मींदारों और राज्य के बीच तने झगड़ों को दर्ज करते हैं। लगे हाथ, ये स्त्रोत यह समझने में हमारी मदद करते हैं कि किसान राज्य को किस नज़रिये से देखते थे और राज्य से उन्हें कैसे न्याय की उम्मीद थी।

1.2 किसान और उनकी ज़मीन

मुग़ल काल के भारतीय-फ़ारसी स्त्रोत किसान के लिए आमतौर पर *रैयत* (बहुवचन, *रिआया*) या *मुज़रियान* शब्द का इस्तेमाल करते थे। साथ ही, हमें किसान या आसामी जैसे शब्द भी मिलते हैं। सत्रहवीं सदी के स्त्रोत

© NCERT not to be republished

स्रोत 1

किसान बस्तियों का बसना-उजड़ना

यह हिंदुस्तानी कृषि समाज की एक ख़ासियत थी और इस ख़ासियत ने मुग़ल शासक बाबर की तेज़ निगाहों को इतना चौंकाया कि उसने इसे अपने संस्मरण *बाबरनामा* में नोट किया:

> हिंदुस्तान में बस्तियाँ और गाँव, दरअसल शहर के शहर, एक लमहे में ही वीरान भी हो जाते हैं और बस भी जाते हैं। वर्षों से आबाद किसी बड़े शहर के बाशिंदे उसे छोड़कर चले जाते हैं, तो वे ये काम कुछ इस तरह करते हैं कि डेढ़ दिनों के अंदर उनका हर नामोनिशान (वहाँ से) मिट जाता है। दूसरी ओर, अगर वे किसी जगह पर बसना चाहते हैं तो उन्हें पानी के रास्ते खोदने की ज़रूरत नहीं होती क्योंकि उनकी सारी फ़सलें बारिश के पानी में उगती हैं, और चूँकि हिंदुस्तान की आबादी बेशुमार है, लोग उमड़ते चले आते हैं। वे एक सरोवर या कुआँ बना लेते हैं; उन्हें घर बनाने या दीवार खड़ी करने की भी ज़रूरत नहीं होती... खस की घास बहुतायात में पाई जाती हैं, जंगल अपार हैं, झोंपड़ियाँ बनाई जाती हैं, और यकायक एक गाँव या शहर खड़ा हो जाता है!

➲ कृषि जीवन के उन पहलुओं का विवरण दीजिए जो बाबर को उत्तर भारत के इलाके की ख़ासियत लगी।

दो किस्म के किसानों की चर्चा करते हैं – *खुद-काश्त* व *पाहि-काश्त*। पहले किस्म के किसान वे थे जो उन्हीं गाँवों में रहते थे जिनमें उनकी ज़मीन थीं। दूसरे (पाहि-काश्त) वे खेतिहर थे जो दूसरे गाँवों से ठेके पर खेती करने आते थे। लोग अपनी मर्ज़ी से भी पाहि-काश्त बनते थे (मसलन, अगर करों की शर्तें किसी दूसरे गाँव में बेहतर मिलें) और मजबूरन भी (मसलन, अकाल या भुखमरी के बाद आर्थिक परेशानी से)।

उत्तर भारत के एक औसत किसान के पास शायद ही कभी एक जोड़ी बैल और दो हल से ज़्यादा कुछ होता था; ज़्यादातर के पास इससे भी कम। गुजरात में जिन किसानों के पास 6 एकड़ के करीब ज़मीन थी वे समृद्ध माने जाते थे; दूसरी तरफ़, बंगाल में एक औसत किसान की ज़मीन की ऊपरी सीमा 5 एकड़ थी; 10 एकड़ ज़मीन वाले आसामी को अमीर समझा जाता था। खेती व्यक्तिगत मिल्कियत के सिद्धांत पर आधारित थी। किसानों की ज़मीन उसी तरह खरीदी और बेची जाती थी जैसे दूसरे संपत्ति मालिकों की।

उन्नीसवीं सदी के दिल्ली-आगरा इलाके में किसानों की मिल्कियत का यह विवरण सत्रहवीं सदी पर भी उतना ही लागू होता है:

> हल जोतने वाले खेतिहर किसान हर ज़मीन की हदों पर मिट्टी, ईंट और काँटों से पहचान के लिए निशान लगाते हैं, और ज़मीन के ऐसे हज़ारों टुकड़े किसी भी गाँव में देखे जा सकते हैं।

1.3 सिंचाई और तकनीक

ज़मीन की बहुतायत, मजदूरों की मौजूदगी, और किसानों की गतिशीलता की वजह से कृषि का लगातार विस्तार हुआ। चूँकि खेती का प्राथमिक उद्देश्य लोगों का पेट भरना था, इसलिए रोज़मर्रा के खाने की जरूरतें जैसे चावल, गेहूँ, ज्वार इत्यादि फ़सलें सबसे ज़्यादा उगाई जाती थीं। जिन इलाकों में प्रति वर्ष 40 इंच या उससे ज़्यादा बारिश होती थी, वहाँ कमोबेश चावल की खेती होती थी। कम और कमतर बारिश वाले इलाकों में क्रमश: गेहूँ व ज्वार-बाजरे की खेती ज़्यादा प्रचलित थी।

मानसून भारतीय कृषि की रीढ़ था, जैसा कि आज भी है। लेकिन कुछ ऐसी फ़सलें भी थीं जिनके लिए अतिरिक्त पानी की ज़रूरत थी। इनके लिए सिंचाई के कृत्रिम उपाय बनाने पड़े।

स्रोत 2

पेड़ों और खेतों की सिंचाई

यह *बाबरनामा* से लिया गया एक अंश है जो सिंचाई के उन उपकरणों के बारे में बताता है जो इस बादशाह ने उत्तर भारत में देखे:

हिंदुस्तान के मुल्क का ज़्यादातर हिस्सा मैदानी ज़मीन पर बसा हुआ है। हालांकि यहाँ शहर और खेती लायक ज़मीन की बहुतायत है, लेकिन कहीं भी बहते पानी (का इंतज़ाम) नहीं... वे इसलिए... कि फ़सल उगाने या बागानों के लिए पानी की बिलकुल ज़रूरत नहीं है। शरद ऋतु की फ़सलें बारिश के पानी से ही पैदा हो जाती हैं; और ये हैरानगी की बात है कि बसंत ऋतु की फ़सलें तो तब भी पैदा हो जाती हैं जब बारिश बिलकुल ही नहीं होती। (फिर भी) छोटे पेड़ों तक बालटियों या रहट के ज़रिये पानी पहुँचाया जाता है...

लाहौर, दीपालपुर (दोनों ही आज के पाकिस्तान में) और ऐसी दूसरी जगहों पर लोग रहट के ज़रिये सिंचाई करते हैं। वे रस्सी के दो गोलाकार फ़ंदे बनाते हैं जो कुएँ की गहराई के मुताबिक लंबे होते हैं। इन फ़ंदों में थोड़ी-थोड़ी दूरी पर वे लकड़ी के गुटके लगाते हैं और इन गुटकों पर घड़े बाँध देते हैं। लकड़ी के गुटकों और घड़ों से बँधी इन रस्सियों को कुएँ के ऊपर पहियों से लटकाया जाता है। पहिये की धुरी पर एक और पहिया। इस अंतिम पहिये को बैल के ज़रिये घुमाया जाता है; इस पहिये के दाँत पास के दूसरे पहिये के दाँतों को जकड़ लेते हैं और इस तरह घड़ों वाला पहिया घूमने लगता है। घड़ों से जहाँ पानी गिरता है, वहाँ एक संकरा नाला खोद दिया जाता है और इस तरीके से हर जगह पानी पहुँचाया जाता है।

आगरा, चाँदवर और बयाना (आज के उत्तर प्रदेश में) में और ऐसे अन्य इलाकों में भी, लोगबाग बालटियों से सिंचाई करते हैं। कुएँ के किनारे पर वे लकड़ी के कन्ने गाड़ देते हैं, इन कन्नों के बीच बेलन टिकाते हैं, एक बड़ी बालटी में रस्सी बाँधते हैं, रस्सी को बेलन पर लपेटते हैं और इसके दूसरे छोर को बैल से बाँध देते हैं। एक शख़्स को बैल हाँकना पड़ता है, दूसरा बालटी से पानी निकालता है।

➲ सिंचाई के जिन साधनों का ज़िक्र बाबर ने किया है उनकी तुलना विजयनगर की सिंचाई (अध्याय 7) व्यवस्था से कीजिए। सिंचाई की इन दोनों अलग-अलग प्रणालियों में किस-किस तरह के संसाधनों की ज़रूरत पड़ती होगी? इनमें से किन-किन प्रणालियों में कृषि तकनीक में सुधार के लिए किसानों की भागेदारी ज़रूरी होती होगी?

चित्र 8.2
रहट की संरचना

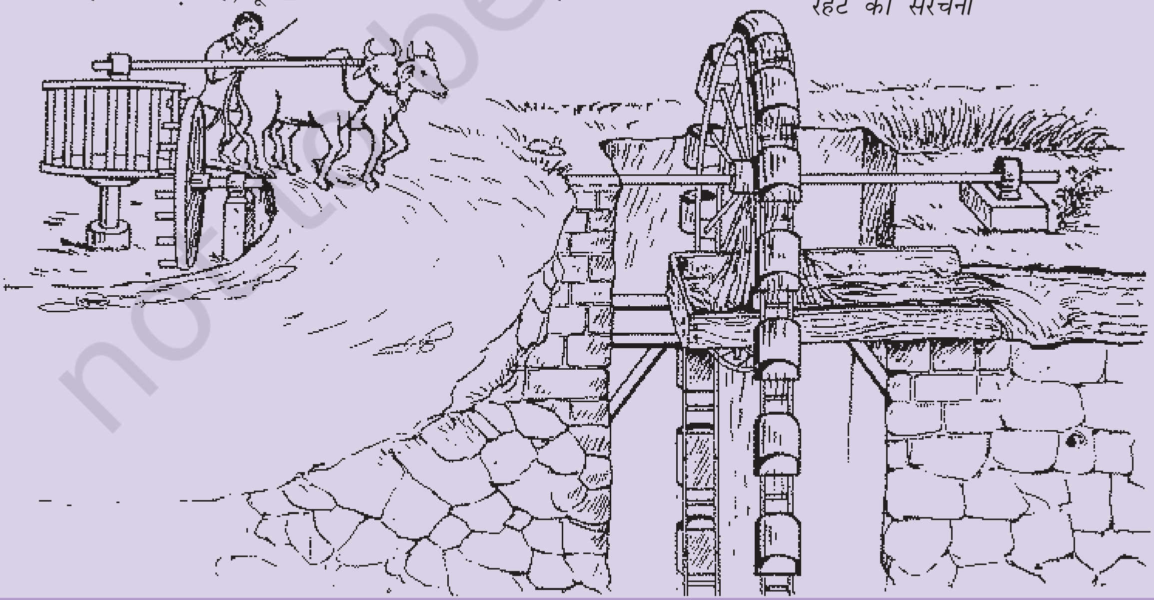

तम्बाकू का प्रसार

यह पौधा सबसे पहले दक्कन पहुँचा और वहाँ से सत्रहवीं सदी के शुरुआती वर्षों में इसे उत्तर भारत लाया गया। *आइन* उत्तर भारत की फ़सलों की सूची में तम्बाकू का ज़िक्र नहीं करती है। अकबर और उसके अभिजातों ने 1604 ई. में पहली बार तम्बाकू देखा। ऐसा लगता है कि इसी समय तम्बाकू का धूम्रपान (हुक्के या चिलम में) करने की लत ने ज़ोर पकड़ा। जहाँगीर इस बुरी आदत के फैलने से इतना चिंतित हुआ कि उसने इस पर पाबंदी लगा दी। यह पाबंदी पूरी तरह से बेअसर साबित हुई क्योंकि हम जानते हैं कि सत्रहवीं सदी के अंत तक, तम्बाकू पूरे भारत में खेती, व्यापार और उपयोग की मुख्य वस्तुओं में से एक था।

कृषि की समृद्धि और आबादी की बढ़ोतरी

कृषि उत्पादन के ऐसे विविध और लचीले तरीक़ों का एक बड़ा नतीजा यह निकला कि आबादी धीरे-धीरे बढ़ने लगी। आर्थिक इतिहासकारों की गणना के मुताबिक, समय-समय पर होने वाली भूखमरी और महामारी के बावजूद, 1600 से 1700 के बीच भारत की आबादी लगभग 5 करोड़ बढ़ गई। 200 वर्षों में यह करीब-करीब 33 फीसदी बढ़ोतरी थी।

सिंचाई कार्यों को राज्य की मदद भी मिलती थी। मसलन, उत्तर भारत में राज्य ने कई नयी नहरें व नाले खुदवाए और कई पुरानी नहरों की मरम्मत करवाई, जैसे कि शाहजहाँ के शासनकाल के दौरान पंजाब में *शाह नहर* ।

वैसे तो खेती मेहनतकशी का काम था लेकिन किसान ऐसी तकनीकों का इस्तेमाल भी करते थे जो अकसर पशुबल पर आधारित होती थीं। ऐसा एक उदाहरण लकड़ी के उस हलके हल का दिया जा सकता है जिसको एक छोर पर लोहे की नुकीली धार या फाल लगाकर आसानी से बनाया जा सकता था। ऐसे हल मिट्टी को बहुत गहरे नहीं खोदते थे जिसके कारण तेज़ गर्मी के महीनों में नमी बची रहती थी। बैलों के जोड़े के सहारे खींचे जाने वाले बरमे का इस्तेमाल बीज बोने के लिए किया जाता था। लेकिन बीजों को हाथ से छिड़क कर बोने का रिवाज ज़्यादा प्रचलित था। मिट्टी की गुड़ाई और साथ-साथ निराई के लिए लकड़ी के मूठ वाले लोहे के पतले धार काम में लाए जाते थे।

1.4 फ़सलों की भरमार

मौसम के दो मुख्य चक्रों के दौरान खेती की जाती थी: एक खरीफ़ (पतझड़ में) और दूसरी रबी (वसंत में)। यानी सूखे इलाकों और बंजर ज़मीन को छोड़ दें तो ज़्यादातर जगहों पर साल में कम से कम दो फ़सलें होती थीं। जहाँ बारिश या सिंचाई के अन्य साधन हर वक्त मौजूद थे वहाँ तो साल में तीन फ़सलें भी उगाई जाती थीं। इस वजह से पैदावार में भारी विविधता पाई जाती थी। उदाहरण के तौर पर, *आइन* हमें बताती है कि दोनों मौसम मिलाकर, मुग़ल प्रांत आगरा में 39 किस्म की फ़सलें उगाई जाती थीं जबकि दिल्ली प्रांत में 43 फ़सलों की पैदावार होती थी। बंगाल में सिर्फ चावल की 50 किस्में पैदा होती थीं।

हालाँकि दैनिक आहार की खेती पर ज़्यादा ज़ोर दिया जाता था मगर इसका मतलब यह नहीं था कि मध्यकालीन भारत में खेती सिर्फ़ गुज़ारा करने के लिए की जाती थी। स्रोतों में हमें अकसर जिन्स-ए-कामिल (सर्वोत्तम फ़सलें) जैसे लफ़्ज़ मिलते हैं। मुग़ल राज्य भी किसानों को ऐसी फ़सलों की खेती करने के लिए बढ़ावा देता था क्योंकि इनसे राज्य को ज़्यादा कर मिलता था। कपास और गन्ने जैसी फ़सलें बेहतरीन जिन्स-ए-कामिल थीं। मध्य भारत और दक्कनी पठार में फैले हुए ज़मीन के बड़े-बड़े टुकड़ों पर कपास उगाई जाती थी, जबकि बंगाल अपनी चीनी के लिए मशहूर था। तिलहन (जैसे सरसों) और दलहन भी नकदी फ़सलों में आती थीं। इससे पता चलता है कि एक औसत किसान की ज़मीन पर किस तरह पेट भरने के लिए होने वाले उत्पादन और व्यापार के लिए किए जाने वाले उत्पादन एक दूसरे से जुड़े हुए थे।

© NCERT not to be republished

सत्रहवीं सदी में दुनिया के अलग-अलग हिस्सों से कई नयी फ़सलें भारतीय उपमहाद्वीप पहुँचीं। मसलन, मक्का भारत में अफ़्रीका और स्पेन के रास्ते आया और सत्रहवीं सदी तक इसकी गिनती पश्चिम भारत की मुख्य फ़सलों में होने लगी। टमाटर, आलू और मिर्च जैसी सब्ज़ियाँ नयी दुनिया से लाई गईं। इसी तरह अनानास और पपीता जैसे फल वहीं से आए।

➲ **चर्चा कीजिए...**
इस अनुभाग में खेती संबंधी जिन क्रियाकलापों और तकनीकों की चर्चा हुई है उनमें से कौन-कौन सी अध्याय 2 में वर्णित तकनीकों और क्रियाकलापों से मिलती-जुलती हैं और कौन कौन सी भिन्न हैं?

2. ग्रामीण समुदाय

ऊपर लिखी बातों से ज़ाहिर है कि कृषि उत्पादन में किसानों की पुरज़ोर भागीदारी और पहल होती थी। इससे मुग़ल समाज के कृषि संबंधों पर क्या असर पड़ता था? यह पता करने के लिए आइए, हम समाज के उन समूहों पर एक नज़र डालें जो खेती के विस्तार में शरीक होते थे। साथ ही हम उनके बीच के रिश्तों और झगड़ों पर भी गौर करेंगे।

हम पहले देख चुके हैं कि किसान की अपनी ज़मीन पर व्यक्तिगत मिल्कियत होती थी। साथ ही जहाँ तक उनके सामाजिक अस्तित्व का सवाल है, कई मायनों में वे एक सामूहिक ग्रामीण समुदाय का हिस्सा थे। इस समुदाय के तीन घटक थे – खेतिहर किसान, पंचायत और गाँव का मुखिया (मुक़द्दम या मंडल)।

2.1 जाति और ग्रामीण माहौल

जाति और अन्य जाति जैसे भेदभावों की वजह से खेतिहर किसान कई तरह के समूहों में बँटे थे। खेतों की जुताई करने वालों में एक बड़ी तादाद ऐसे लोगों की थी जो नीच समझे जाने वाले कामों में लगे थे, या फिर खेतों में मज़दूरी करते थे।

हालाँकि खेती लायक ज़मीन की कमी नहीं थी, फिर भी कुछ जाति के लोगों को सिर्फ नीच समझे जाने वाले काम ही दिए जाते थे। इस तरह वे ग़रीब रहने के लिए मजबूर थे। जनगणना तो उस वक्त नहीं होती थी, पर जो थोड़े बहुत आँकड़े और तथ्य हमारे पास हैं उनसे पता चलता है कि गाँव की आबादी का बहुत बड़ा हिस्सा ऐसे ही समूहों का था। इनके पास संसाधन सबसे कम थे और ये जाति व्यवस्था की पाबंदियों से बँधे थे। इनकी हालत कमोबेश

चित्र 8.3
आरंभिक उन्नीसवीं शताब्दी का एक चित्र जिसमें पंजाब के एक गाँव को दिखाया गया है।

➲ चित्र में महिलाएँ और पुरुष क्या-क्या करते दिखाए गए हैं? गाँव की वास्तुकला का भी वर्णन कीजिए।

© NCERT not to be republished

वैसी ही थी जैसी कि आधुनिक भारत में दलितों की। दूसरे संप्रदायों में भी ऐसे भेदभाव फैलने लगे थे। मुसलमान समुदायों में हलालख़ोरान जैसे 'नीच' कामों से जुड़े समूह गाँव की हदों के बाहर ही रह सकते थे; इसी तरह बिहार में मल्लाहज़ादाओं (शाब्दिक अर्थ, नाविकों के पुत्र), की तुलना दासों से की जा सकती थी।

समाज के निचले तबकों में जाति, गरीबी और सामाजिक हैसियत के बीच सीधा रिश्ता था। ऐसा बीच के समूहों में नहीं था। सत्रहवीं सदी में मारवाड़ में लिखी गई एक किताब राजपूतों की चर्चा किसानों के रूप में करती है। इस किताब के मुताबिक जाट भी किसान थे लेकिन जाति व्यवस्था में उनकी जगह राजपूतों के मुक़ाबले नीची थी। सत्रहवीं सदी में राजपूत होने का दावा वृंदावन (उत्तर प्रदेश) के इलाके में गौरव समुदाय ने भी किया, बावजूद इसके कि वे ज़मीन की जुताई के काम में लगे थे। पशुपालन और बागबानी में बढ़ते मुनाफ़े की वजह से अहीर, गुज्जर और माली जैसी जातियाँ सामाजिक सीढ़ी में ऊपर उठीं। पूर्वी इलाकों में, पशुपालक और मछुआरी जातियाँ, जैसे सदगोप व कैवर्त भी किसानों की सी सामाजिक स्थिति पाने लगीं।

2.2 पंचायतें और मुखिया

गाँव की पंचायत में बुज़ुर्गों का जमावड़ा होता था। आमतौर पर वे गाँव के महत्त्वपूर्ण लोग हुआ करते थे जिनके पास अपनी संपत्ति के पुश्तैनी अधिकार होते थे। जिन गाँवों में कई जातियों के लोग रहते थे, वहाँ अकसर पंचायत में भी विविधता पाई जाती थी। यह एक ऐसा अल्पतंत्र था जिसमें गाँव के अलग-अलग संप्रदायों और जातियों की नुमाइंदगी होती थी। फिर भी इसकी संभावना कम ही है कि छोटे-मोटे और "नीच" काम करने वाले खेतिहर मज़दूरों के लिए इसमें कोई जगह होती होगी। पंचायत का फ़ैसला गाँव में सबको मानना पड़ता था।

पंचायत का सरदार एक मुखिया होता था जिसे मुक़द्दम या मंडल कहते थे। कुछ स्रोतों से ऐसा लगता है कि मुखिया का चुनाव गाँव के बुज़ुर्गों की आम सहमति से होता था और इस चुनाव के बाद उन्हें इसकी मंज़ूरी ज़मींदार से लेनी पड़ती थी। मुखिया अपने ओहदे पर तभी तक बना रहता था जब तक गाँव के बुज़ुर्गों को उस पर भरोसा था। ऐसा नहीं होने पर बुज़ुर्ग उसे बर्ख़ास्त कर सकते थे। गाँव के आमदनी व खर्चे का हिसाब-किताब अपनी निगरानी में बनवाना मुखिया का मुख्य काम था और इसमें पंचायत का पटवारी उसकी मदद करता था।

पंचायत का खर्चा गाँव के उस आम ख़ज़ाने से चलता था जिसमें हर व्यक्ति अपना योगदान देता था। इस ख़ज़ाने से उन कर अधिकारियों की ख़ातिरदारी का ख़र्चा भी किया जाता था जो समय-समय पर गाँव

भ्रष्ट मंडल

मंडल अकसर अपने ओहदे का ग़लत इस्तेमाल करते थे। मुख्यत: उन पर ये आरोप था कि वे पटवारी के साथ मिलकर हिसाब-किताब में हेरा-फेरी करते थे, और यह भी कि वे अपनी ज़मीन पर कर का आकलन कम करके, अतिरिक्त बोझ छोटे किसानों पर डाल देते थे।

चित्र 8.4
प्रारंभिक उन्नीसवीं शताब्दी का चित्र जिसमें गाँव के बुज़ुर्ग कर अधिकारियों से मिल रहे हैं।

➲ चित्रकार ने गाँव के बुज़ुर्गों और कर अधिकारियों में फ़र्क कैसे डाला है?

का दौरा किया करते थे। दूसरी ओर, इस कोष का इस्तेमाल बाढ़ जैसी प्राकृतिक विपदाओं से निपटने के लिए भी होता था और ऐसे सामुदायिक कार्यों के लिए भी जो किसान खुद नहीं कर सकते थे, जैसे कि मिट्टी के छोटे-मोटे बाँध बनाना या नहर खोदना।

पंचायत का एक बड़ा काम यह तसल्ली करना था कि गाँव में रहने वाले अलग-अलग समुदायों के लोग अपनी जाति की हदों के अंदर रहें। पूर्वी भारत में सभी शादियाँ मंडल की मौजूदगी में होती थीं। यूँ कहा जा सकता है कि "जाति की अवहेलना रोकने के लिए" लोगों के आचरण पर नज़र रखना गाँव के मुखिया की ज़िम्मेदारियों में से एक था।

पंचायतों को जुर्माना लगाने और समुदाय से निष्कासित करने जैसे ज़्यादा गंभीर दंड देने के अधिकार थे। समुदाय से बाहर निकालना एक कड़ा कदम था जो एक सीमित समय के लिए लागू किया जाता था। इसके तहत दंडित व्यक्ति को (दिए हुए समय के लिए) गाँव छोड़ना पड़ता था। इस दौरान वह अपनी जाति और पेशे से हाथ धो बैठता था। ऐसी नीतियों का मकसद जातिगत रिवाजों की अवहेलना रोकना था।

ग्राम पंचायत के अलावा गाँव में हर जाति की अपनी पंचायत होती थी। समाज में ये पंचायतें काफ़ी ताकतवर होती थीं। राजस्थान में जाति पंचायतें अलग-अलग जातियों के लोगों के बीच दीवानी के झगड़ों का निपटारा करती थीं। वे ज़मीन से जुड़े दावेदारियों के झगड़े सुलझाती थीं; यह तय करती थीं कि शादियाँ जातिगत मानदंडों के मुताबिक हो रही हैं या नहीं, और यह भी कि गाँव के आयोजन में किसको किसके ऊपर तरजीह दी जाएगी। कर्मकांडीय वर्चस्व किस क्रम में होगा। फ़ौजदारी न्याय को छोड़ दें तो ज़्यादातर मामलों में राज्य जाति पंचायत के फ़ैसलों को मानता था।

पश्चिम भारत – ख़ासकर राजस्थान और महाराष्ट्र जैसे प्रांतों– के संकलित दस्तावेज़ों में ऐसी कई अर्ज़ियाँ हैं जिनमें पंचायत से "ऊँची" जातियों या राज्य के अधिकारियों के ख़िलाफ़ ज़बरन कर उगाही या बेगार वसूली की शिकायत की गई है। आमतौर पर यह अर्ज़ियाँ ग्रामीण समुदाय के सबसे निचले तबके के लोग लगाते थे। अकसर

चित्र 8.5
कपड़ा उत्पादन को दर्शाती सत्रहवीं शताब्दी की एक चित्रकारी

➲ चित्र में दर्शायी गई गतिविधियों का वर्णन कीजिए।

सामूहिक तौर पर भी ऐसी अर्ज़ियाँ दी जाती थीं। इनमें किसी जाति या संप्रदाय विशेष के लोग संभ्रांत समूहों की उन माँगों के ख़िलाफ़ अपना विरोध जताते थे जिन्हें वे नैतिक दृष्टि से अवैध मानते थे। उनमें एक थी बहुत ज़्यादा कर की माँग क्योंकि इससे किसानों का दैनिक गुज़ारा ही जोखिम में पड़ जाता था, ख़ासकर सूखे या ऐसी दूसरी विपदाओं के दौरान। उनकी नज़रों में ज़िंदा रहने के लिए न्यूनतम बुनियादी साधन उनका परंपरागत रिवाजी हक़ था। वे समझते थे कि ग्राम पंचायत को इसकी सुनवाई करनी चाहिए और यह सुनिश्चित करना चाहिए कि राज्य अपना नैतिक फ़र्ज़ अदा करे और न्याय करे। "निचली जाति" के किसानों और राज्य के अधिकारियों या स्थानीय ज़मींदारों के बीच झगड़ों में पंचायत के फ़ैसले अलग-अलग मामलों में अलग-अलग हो सकते थे। अत्यधिक कर की माँगों के मामले में पंचायत अकसर समझौते का सुझाव देती थी। जहाँ समझौते नहीं हो पाते थे, वहाँ किसान विरोध के ज़्यादा उग्र रास्ते अपनाते थे, जैसे कि गाँव छोड़कर भाग जाना। जोतने लायक खाली ज़मीन अपेक्षाकृत आसानी से उपलब्ध थी जबकि श्रम को लेकर प्रतियोगिता थी। इस वजह से, गाँव छोड़कर भाग जाना खेतिहरों के हाथ में एक बड़ा प्रभावी हथियार था।

2.3 ग्रामीण दस्तकार

अलग-अलग तरह के उत्पादन कार्य में जुटे लोगों के बीच फैले लेन-देन के रिश्ते गाँव का एक और रोचक पहलू था। अंग्रेज़ी शासन के शुरुआती वर्षों में किए गए गाँवों के सर्वेक्षण और मराठाओं के दस्तावेज़ बताते हैं कि गाँवों में दस्तकार काफ़ी अच्छी तादाद में रहते थे। कहीं-कहीं तो कुल घरों के 25 फ़ीसदी घर दस्तकारों के थे।

कभी-कभी किसानों और दस्ताकारों के बीच फ़र्क करना मुश्किल होता था क्योंकि कई ऐसे समूह थे जो दोनों किस्म के काम करते थे। खेतिहर और उसके परिवार के सदस्य कई तरह की वस्तुओं के उत्पादन में शिरकत करते थे।

मसलन–रँगरेज़ी, कपड़े पर छपाई, मिट्टी के बरतनों को पकाना, खेती के औज़ारों को बनाना या उनकी मरम्मत करना। उन महीनों में जब उनके पास खेती के काम से फ़ुरसत होती–जैसे कि बुआई और सुहाई के बीच या सुहाई और कटाई के बीच–उस समय ये खेतिहर दस्तकारी का काम करते थे।

कुम्हार, लोहार, बढ़ई, नाई, यहाँ तक कि सुनार जैसे ग्रामीण दस्तकार भी अपनी सेवाएँ गाँव के लोगों को देते थे जिसके बदले गाँव वाले उन्हें अलग-अलग तरीक़ों से उन सेवाओं की अदायगी करते थे। आमतौर पर या तो उन्हें फ़सल का एक हिस्सा दे दिया जाता था या फिर गाँव की ज़मीन का एक टुकड़ा, शायद कोई ऐसी ज़मीन जो खेती लायक होने के बावजूद बेकार पड़ी थी। अदायगी की सूरत क्या होगी ये शायद पंचायत ही तय करती थी। महाराष्ट्र में ऐसी ज़मीन दस्तकारों की *मीरास* या *वतन* बन गई जिस पर दस्तकारों का पुश्तैनी अधिकार होता था।

यही व्यवस्था कभी-कभी थोड़े बदले हुए रूप में भी पायी जाती थी जहाँ दस्तकार और हरेक खेतिहर परिवार परस्पर बातचीत करके अदायगी की किसी एक व्यवस्था पर राज़ी होते थे। ऐसे में आमतौर पर वस्तुओं और सेवाओं का विनिमय होता था। उदाहरण के तौर पर, अठारहवीं सदी के स्रोत बताते हैं कि बंगाल में ज़मींदार उनकी सेवाओं के बदले लोहारों, बढ़ई और सुनारों तक को "रोज़ का भत्ता और खाने के लिए नकदी देते थे।" इस व्यवस्था को जजमानी कहते थे, हालांकि यह शब्द सोलहवीं व सत्रहवीं सदी में बहुत इस्तेमाल नहीं होता था। ये सबूत मज़ेदार हैं क्योंकि इनसे पता चलता है कि गाँव के छोटे स्तर पर फ़ेर-बदल के रिश्ते कितने पेचीदा थे। ऐसा नहीं है कि नकद अदायगी का चलन बिलकुल ही नदारद था।

2.4 एक "छोटा गणराज्य"?

ग्रामीण समुदाय की अहमियत को हम कैसे समझें? उन्नीसवीं सदी के कुछ अंग्रेज़ अफ़सरों ने भारतीय गाँवों को एक ऐसे "छोटे गणराज्य" के रूप में देखा जहाँ लोग सामूहिक स्तर पर भाईचारे के साथ संसाधनों और श्रम का बँटवारा करते थे। लेकिन ऐसा नहीं लगता कि गाँव में सामाजिक बराबरी थी। संपत्ति की व्यक्तिगत मिल्कियत होती थी, साथ ही जाति और जेंडर (सामाजिक लिंग) के नाम पर समाज में गहरी विषमताएँ थीं। कुछ ताकतवर लोग गाँव के मसलों पर फ़ैसले लेते थे और कमज़ोर वर्गों का शोषण करते थे। न्याय करने का अधिकार भी उन्हीं को मिला हुआ था।

इससे भी महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि गाँवों और शहरों के बीच होने वाले व्यापार की वजह से गाँवों में भी नकद के रिश्ते फैल चुके थे।

गाँव में मुद्रा

सत्रहवीं सदी में फ्रांसीसी यात्री ज़्यां बैप्टिस्ट तैवर्नियर को यह बात उल्लेखनीय लगी कि "भारत में वे गाँव बहुत ही छोटे कहे जाएँगे जिनमें मुद्रा की फेर बदल करने वाले, जिन्हें *सराफ़* कहते हैं, न हों। एक बैंकर की तरह *सराफ़* हवाला भुगतान करते हैं (और) अपनी मर्ज़ी के मुताबिक पैसे के मुकाबले रुपये की कीमत बढ़ा देते हैं और कौड़ियों के मुकाबले पैसे की।

चित्र 8.6
सराफ़ अपने काम में लगा हुआ है।

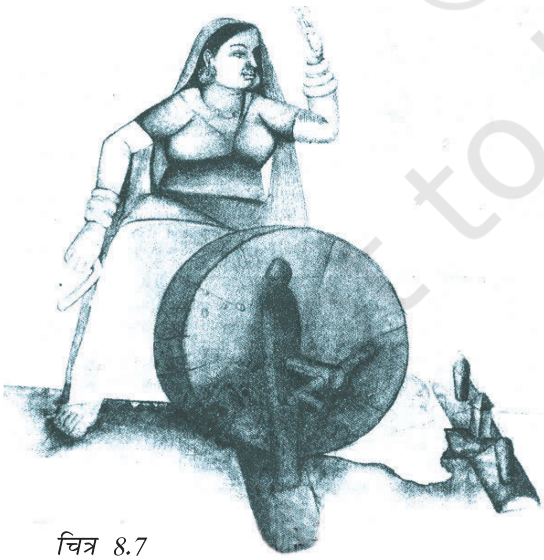

चित्र 8.7
सूत कातती महिला

मुग़लों के केंद्रीय इलाकों में कर की गणना और वसूली भी नकद में की जाती थी। जो दस्तकार निर्यात के लिए उत्पादन करते थे, उन्हें उनकी मज़दूरी या पूर्व भुगतान भी नकद में ही मिलता था। इसी तरह कपास, रेशम या नील जैसी व्यापारिक फ़सलें पैदा करने वालों का भुगतान भी नकदी ही होता था।

➲ चर्चा कीजिए...

इस अनुभाग में जिन पंचायतों का ज़िक्र किया गया है, वे आपके मुताबिक किस तरह से आज की ग्राम पंचायतों से मिलती-जुलती थीं अथवा भिन्न थीं?

3. कृषि समाज में महिलाएँ

जैसा कि शायद कई समाजों में आपने गौर किया होगा, उत्पादन की प्रक्रिया में मर्द और महिलाएँ खास किस्म की भूमिकाएँ अदा करते हैं। जिस संदर्भ में हम बात कर रहे हैं, वहाँ महिलाएँ और मर्द कंधे से कंधा मिलाकर खेतों में काम करते थे। मर्द खेत जोतते थे व हल चलाते थे और महिलाएँ बुआई, निराई और कटाई के साथ-साथ पकी हुई फ़सल का दाना निकालने का काम करती थीं। जब छोटी-छोटी ग्रामीण इकाइयों का और किसान की व्यक्तिगत खेती का विकास हुआ–जो कि मध्यकालीन भारतीय कृषि की ख़ासियत थी–तब घर-परिवार के संसाधन और श्रम, उत्पादन की बुनियाद बने। स्वाभाविक तौर पर, ऐसे में लिंग बोध के आधार पर आमतौर पर किया जाने वाला फ़र्क (घर के लिए महिलाएँ और बाहर के लिए मर्द) मुमकिन नहीं था। फिर भी महिलाओं की जैव वैज्ञानिक क्रियाओं को लेकर लोगों के मन में पूर्वाग्रह बने रहे। मसलन पश्चिमी भारत में, राजस्वला महिलाओं को हल या कुम्हार का चाक छूने की इजाज़त नहीं थी; इसी तरह बंगाल में अपने मासिक-धर्म के समय महिलाएँ पान के बगान में नहीं घुस सकती थीं।

सूत कातने, बरतन बनाने के लिए मिट्टी को साफ़ करने और गूँधने, और कपड़ों पर कढ़ाई जैसे दस्तकारी के काम उत्पादन के ऐसे पहलू थे जो महिलाओं के श्रम पर निर्भर थे। किसी वस्तु का जितना वाणिज्यीकरण होता था, उसके उत्पादन के लिए महिलाओं के श्रम की उतनी ही माँग होती थी। दरअसल, किसान और दस्तकार महिलाएँ ज़रूरत पड़ने पर न सिर्फ़ खेतों में काम करती थीं बल्कि नियोक्ताओं के घरों पर भी जाती थीं और बाज़ारों में भी।

© NCERT not to be republished

चूँकि समाज श्रम पर निर्भर था, इसलिए बच्चे पैदा करने की अपनी क़ाबिलियत की वजह से महिलाओं को महत्त्वपूर्ण संसाधन के रूप में देखा जाता था। फिर भी शादी-शुदा महिलाओं की कमी थी क्योंकि कुपोषण, बार-बार माँ बनने और प्रसव के वक़्त मौत की वजह से महिलाओं में मृत्युदर बहुत ज़्यादा था। इससे किसान और दस्तकार समाज में ऐसे सामाजिक रिवाज पैदा हुए जो संभ्रांत समूहों से बहुत अलग थे। कई ग्रामीण संप्रदायों में शादी के लिए "दुलहन की कीमत" अदा करने की ज़रूरत होती थी, न कि दहेज की। तलाकशुदा महिलाएँ और विधवाएँ दोनों ही कानूनन शादी कर सकती थीं।

महिलाओं की प्रजनन शक्ति को इतनी अहमियत दी जाती थी कि उस पर काबू खोने का बड़ा डर था। स्थापित रिवाजों के मुताबिक घर का मुखिया मर्द होता था। इस तरह महिला पर परिवार और समुदाय के मर्दों द्वारा पुरज़ोर काबू रखा जाता था। बेवफ़ाई के शक पर ही महिलाओं को भयानक दंड दिए जा सकते थे।

राजस्थान, गुजरात और महाराष्ट्र आदि पश्चिमी भारत के इलाकों से मिले दस्तावेज़ों में ऐसी दरख्वास्त मिली हैं जो महिलाओं ने न्याय और मुआवज़े की उम्मीद से ग्राम पंचायत को भेजी थीं। पत्नियाँ अपने पतियों की बेवफ़ाई का विरोध करती दिखाई देती हैं या फिर गृहस्थी के मर्द पर ये आरोप लगातीं कि वे पत्नी और बच्चों की अनदेखी करता है। मर्दों की बेवफ़ाई हमेशा दंडित नहीं होती थी; लेकिन राज्य और "ऊँची" जाति के लोग अकसर ये सुनश्चित करने की कोशिश करते कि परिवार के भरण-पोषण का इंतज़ाम हो जाए। ज़्यादातर, जब महिलाएँ पंचायत को दरख्वास्त देतीं, उनके नाम दस्तावेज़ों में दर्ज नहीं किए जाते: दरख्वास्त करने वाली का हवाला गृहस्थी के मर्द/मुखिया की माँ, बहन या पत्नी के रूप में दिया जाता था।

भूमिहर भद्रजनों में महिलाओं को पुश्तैनी संपत्ति का हक़ मिला हुआ था। पंजाब से ऐसे उदाहरण मिलते हैं जहाँ महिलाएँ (विधवा महिलाएँ भी) पुश्तैनी संपत्ति के विक्रेता के रूप में ग्रामीण ज़मीन के बाज़ार में सक्रिय हिस्सेदारी रखती थीं। हिंदू और मुसलमान महिलाओं को ज़मींदारी उत्तराधिकार में मिलती थी जिसे बेचने अथवा गिरवी रखने के लिए वे स्वतंत्र थीं। बंगाल में भी महिला ज़मींदार पाई जाती थीं। अठारहवीं सदी की सबसे बड़ी और मशहूर ज़मींदारियों में से एक थी राजशाही की ज़मींदारी जिसकी कर्ता-धर्ता एक स्त्री थी।

➲ चर्चा कीजिए...

क्या आपके प्रांत में कृषि भूमि पर महिलाओं और मर्दों की पहुँच में कोई फ़र्क है?

चित्र 8.8 (क)
फ़तेहपुर सीकरी का निर्माण।
महिलाएँ पत्थर तोड़ रही हैं।

चित्र 8.8 (ख)
बोझा ढोती महिलाएँ।
आस-पास के दूसरे गाँवों से आने वाली महिलाएँ अकसर ऐसे निर्माण-स्थलों पर काम करती थीं।

© NCERT not to be republished

4 जंगल और कबीले

4.1 बसे हुए गाँवों के परे

ग्रामीण भारत में, बसे हुए लोगों की खेती के अलावा भी बहुत कुछ था। उत्तर और उत्तर-पश्चिमी भारत की गहरी खेती वाले प्रदेशों को छोड़ दें तो ज़मीन के विशाल हिस्से जंगल या झाड़ियों (खरबंदी) से घिरे थे। ऐसे इलाके झारखंड सहित पूरे पूर्वी भारत, मध्य भारत, उत्तरी क्षेत्र (जिसमें भारत-नेपाल के सीमावर्ती इलाके की तराई शामिल हैं), दक्षिणी भारत का पश्चिमी घाट और दक्कन के पठारों में फैले हुए थे। हालाँकि इस काल में अखिल भारतीय स्तर पर जंगलों के फैलाव का औसत निकालना लगभग असंभव है, फिर भी समसामयिक स्रोतों से मिली जानकारी के आधार पर ये अंदाज़ा लगाया जा सकता है कि यह औसत करीब-करीब 40 फ़ीसदी था।

चित्र 8.9
नीलगाय का शिकार करते हुए शाहजहाँ का चित्र (बादशाहनामा से)

➲ आप इस चित्र में जो देखते हैं उसका वर्णन कीजिए। इसमें ऐसा कौन सा सांकेतिक तत्व है जो शिकार और एक आदर्श न्याय व्यवस्था को जोड़ता है?

समसामयिक रचनाएँ जंगल में रहने वालों के लिए जंगली शब्द का इस्तेमाल करती है। लेकिन जंगली होने का मतलब सभ्यता का न होना बिलकुल नहीं था, वैसे आजकल इस शब्द का प्रचलित अर्थ यही है। उन दिनों इस शब्द का इस्तेमाल ऐसे लोगों के लिए होता था जिनका गुज़ारा जंगल के उत्पादों, शिकार और स्थानांतरीय खेती से होता था। ये काम मौसम के मुताबिक होते थे। उदाहरण के तौर पर भीलों में, बसंत के मौसम में जंगल के उत्पाद इकट्ठा किए जाते, गर्मियों में मछली पकड़ी जाती, मानसून के महीनों मे खेती की जाती, और शरद व जाड़े के महीनों में शिकार किया जाता था। यह सिलसिला लगातार गतिशीलता की बुनियाद पर खड़ा था और इस बुनियाद को मज़बूत भी करता था। लगातार एक जगह से दूसरी जगह घूमते रहना इन जंगलों में रहने वाले कबीलों की एक खासियत थी।

जहाँ तक राज्य का सवाल है, उसके लिए जंगल उलट फेर वाला इलाका था : बदमाशों को शरण देने वाला अड्डा (मवास)। एक बार फिर हम बाबर की ओर देखते हैं जो कहता है कि जंगल एक ऐसा रक्षाकवच था "जिसके पीछे परग़ना के लोग कड़े विद्रोही हो जाते थे और कर अदा करने से मुकर जाते थे।"

4.2 जंगलों में घुसपैठ

जंगल में बाहरी ताकतें कई तरह से घुसती थीं, मसलन, राज्य को सेना के लिए हाथियों की जरूरत होती थी। इसलिए, जंगलवासियों से ली जाने वाली पेशकश में अकसर हाथी भी शामिल होते थे।

मुग़ल राजनीतिक विचारधारा में, गरीबों और अमीरों सहित सबके साथ जुड़ते हुए राज्य के गहरे सरोकार का एक लक्षण था–शिकार अभियान। दरबारी इतिहासकारों की मानें, तो शिकार अभियान के नाम पर बादशाह अपने विशाल साम्राज्य के कोने-कोने का दौरा करता था और इस तरह अलग-अलग इलाकों के लोगों की समस्याओं और शिकायतों पर व्यक्तिगत रूप से गौर करता था। दरबारी कलाकारों के चित्रों में शिकार का विषय बार-बार आता था। इन चित्रों में चित्रकार अकसर छोटा-सा एक ऐसा दृश्य डाल देते थे जो सद्भावनापूर्ण शासन का संकेत देता था।

परगना मुग़ल प्रांतों में एक प्रशासनिक प्रमंडल था।

पेशकश मुग़ल राज्य के द्वारा ली जाने वाली एक तरह की भेंट थी।

स्रोत 3

कृषि बस्तियों के लिए जंगलों का सफ़ाया

यह सोलहवीं सदी में मुकुंदराम चक्रवर्ती की लिखी एक बंगाली कविता *चंडीमंगल* का एक अंश है। कविता के नायक, कालकेतु ने जंगल खाली करवा के, एक साम्राज्य की स्थापना की :

ख़बर मिलते ही, परदेसी आने लगे तमाम जगहों से।
फिर कालकेतु ने ख़रीद कर बाँटे उनमें
भारी भरकम चाकू, कुल्हाड़ी, और भाले-बरछे।
उत्तर से आए दास
सैकड़ों उमड़ते हुए।
हुए चकित देखकर कालकेतु को
जिसने दी सुपारी एक-एक को।
दक्खिन से आए फ़सल कटाई वाले
एक उद्यमी के साथ पाँच सौ।
पश्चिम से आया ज़फ़र मियाँ
साथ में बाईस हज़ार लोग।
हाथों में सुलेमानी मोती की माला
जपते हुए पीर ओ पैग़म्बर का नाम।
जंगलों को हटाने के बाद
उन्होंने बसाए बाज़ार।
सैकड़ों सैकड़ों की तादाद में बिदेसी
जंगलों को (जैसे) खा लिए, और घुस आए वहाँ।
कुल्हाड़ियों की आवाज़ सुनकर
शेर डर गए और दहाड़ते हुए भाग निकले।

➲ यह पद्यांश जंगल में घुसपैठ के कौन से रूपों को उजागर करता है? इसके संदेश की तुलना चित्र 8.9 में दिये गए लघु चित्र से कीजिए। जंगल में रहने वाले लोगों के अनुसार पद्यांश में किन्हें "बिदेसी" बताया गया है?

© NCERT not to be republished

स्रोत 4

पहाड़ी कबीलों और मैदानों के बीच व्यापार, लगभग 1595

अवध सूबे (आज के उत्तर प्रदेश का हिस्सा) के मैदानी इलाकों और पहाड़ी कबीलों के बीच होने वाले लेन-देन के बारे में अबुल फ़ज़्ल ने कुछ इस तरह लिखा है:

उत्तर के पहाड़ों से इंसानों, मोटे-मोटे घोड़ों और बकरों की पीठ पर लादकर बेशुमार सामान ले जाए जाते हैं, जैसे कि सोना, ताँबा, शीशा, कस्तूरी, सुरागाय (याक) की पूँछ, शहद, चुक (संतरे के रस और नींबू के रस को साथ उबालकर बनाया जाने वाला एक अम्ल), अनार दाना, अदरख, लंबी मिर्च, मजीठ (जिससे लाल रंग बनाया जाता है) की जड़ें, सुहागा, ज़दवार (हल्दी जैसी एक जड़), मोम, ऊनी कपड़े, लकड़ी के सामान, चील, बाज़, काले बाज़, मर्लिन (बाज़ पक्षी की ही एक किस्म), और अन्य वस्तुएँ। इसके बदले, वे सफ़ेद और रंगीन कपड़े, कहरुबा (एक पीला-भूरा धातु जिससे गहने बनाए जाते थे), नमक, हींग, गहने और शीशे व मिट्टी के बरतन वापिस ले जाते हैं।

➲ इस अनुच्छेद में परिवहन के कौन से तरीक़ों का ज़िक्र किया गया है? आपके मुताबिक, इनका इस्तेमाल क्यों किया जाता था? मैदानों से जो सामान पहाड़ ले जाए जाते थे, उनमें से हर एक वस्तु किस काम में लाई जाती होगी, इसका खुलासा कीजिए।

वाणिज्यिक खेती का असर, बाहरी कारक के रूप में, जंगलवासियों की ज़िंदगी पर भी पड़ता था। जंगल के उत्पाद–जैसे शहद, मधुमोम और लाक की बहुत माँग थी। लाक जैसी कुछ वस्तुएँ तो सत्रहवीं सदी में भारत से समुद्र पार होने वाले निर्यात की मुख्य वस्तुएँ थीं। हाथी भी पकड़े और बेचे जाते थे। व्यापार के तहत वस्तुओं की अदला-बदली भी होती थी। कुछ कबीले भारत और अफ़ग़ानिस्तान के बीच होने वाले ज़मीनी व्यापार में लगे थे, जैसे पंजाब का लोहानी कबीला। वे पंजाब के गाँवों और शहरों के बीच होने वाले व्यापार में भी शिरकत करते थे।

सामाजिक कारणों से भी जंगलवासियों के जीवन में बदलाव आए। कबीलों के भी सरदार होते थे, बहुत कुछ ग्रामीण समुदाय के "बड़े आदमियों" की तरह। कई कबीलों के सरदार ज़मींदार बन गए, कुछ तो राजा भी हो गये। ऐसे में उन्हें सेना खड़ी करने की ज़रूरत हुई। उन्होंने अपने ही खानदान के लोगों को सेना में भर्ती किया; या फिर अपने ही भाई-बंधुओं से सैन्य सेवा की माँग की। सिंध इलाके की कबीलाई सेनाओं में 6000 घुड़सवार और 7000 पैदल सिपाही होते थे। असम में, अहोम राजाओं के अपने *पायक* होते थे। ये वे लोग थे जिन्हें ज़मीन के बदले सैनिक सेवा देनी पड़ती थी। अहोम राजाओं ने जंगली हाथी पकड़ने पर अपने एकाधिकार का ऐलान भी कर रखा था।

चित्र 8.10
सूफ़ी गायक को सुनते हुए एक किसान और एक शिकारी।

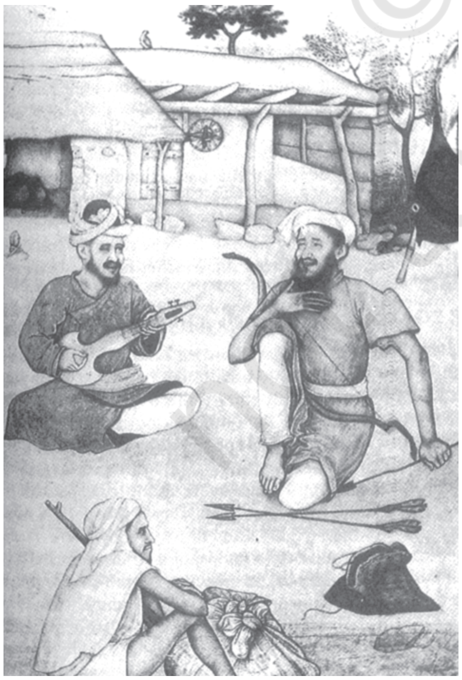

हालाँकि कबीलाई व्यवस्था से राजतांत्रिक प्रणाली की तरफ़ संक्रमण बहुत पहले ही शुरू हो चुका था, लेकिन ऐसा लगता है कि सोलहवीं सदी में

आकर ही यह प्रक्रिया पूरी तरह विकसित हुई। इसकी जानकारी हमें उत्तर-पूर्वी इलाकों में कबीलाई राज्यों के बारे में *आइन* की बातों से मिलती है। उदाहरण के तौर पर, सोलहवीं-सत्रहवीं सदी में कोच राजाओं ने पड़ोसी कबीलों के साथ एक के बाद एक युद्ध किया और उन पर अपना कब्ज़ा जमा लिया।

जंगल के इलाकों में नए सांस्कृतिक प्रभावों के विस्तार की भी शुरुआत हुई। कुछ इतिहासकारों ने तो दरअसल यह भी सुझाया है कि नए बसे इलाकों के खेतिहर समुदायों ने जिस तरह धीरे-धीरे इस्लाम को अपनाया उसमें सूफ़ी संतों (पीर) ने एक बड़ी भूमिका अदा की थी (अध्याय 6 भी देखिए)।

➲ चर्चा कीजिए...

पता कीजिए कि आपके प्रांत में किन क्षेत्रों को आजकल जंगल वाले इलाके के रूप में पहचाना जाता है? क्या इन इलाकों में आज ज़िंदगियाँ बदल रही हैं? इन बदलावों की वजहें वही हैं जिनका ज़िक्र हमने इस अनुभाग में किया है या उनसे अलग?

5. ज़मींदार

मुग़ल भारत में कृषि संबंधों की हमारी दास्तान तब तक अधूरी रहेगी जब तक गाँवों में रहने वाले एक ऐसे तबके की बात न कर लें जिनकी कमाई तो खेती से आती थी लेकिन जो कृषि उत्पादन में सीधे हिस्सेदारी नहीं करते थे। ये ज़मींदार थे जो अपनी ज़मीन के मालिक होते थे और जिन्हें ग्रामीण समाज में ऊँची हैसियत की वजह से कुछ खास सामाजिक और आर्थिक सुविधाएँ मिली हुई थीं। ज़मींदारों की बढ़ी हुई हैसियत के पीछे एक कारण जाति था; दूसरा कारण यह था कि वे लोग राज्य को कुछ खास किस्म की सेवाएँ (ख़िदमत) देते थे।

ज़मींदारों की समृद्धि की वजह थी उनकी विस्तृत व्यक्तिगत ज़मीन। इन्हें *मिल्कियत* कहते थे, यानी संपत्ति। मिल्कियत ज़मीन पर ज़मींदार के निजी इस्तेमाल के लिए खेती होती थी। अकसर इन ज़मीनों पर दिहाड़ी के मज़दूर या पराधीन मज़दूर काम करते थे। ज़मींदार अपनी मर्ज़ी के मुताबिक इन ज़मीनों को बेच सकते थे, किसी और के नाम कर सकते थे या उन्हें गिरवी रख सकते थे।

ज़मींदारों की ताकत इस बात से भी आती थी कि वे अकसर राज्य की ओर से कर वसूल कर सकते थे। इसके बदले उन्हें वित्तीय मुआवज़ा मिलता था। सैनिक संसाधन उनकी ताकत का एक और ज़रिया था। ज़्यादातर ज़मींदारों के पास अपने किले भी थे और अपनी सैनिक टुकड़ियाँ भी जिसमें घुड़सवारों, तोपखाने और पैदल सिपाहियों के जत्थे होते थे।

इस तरह, अगर हम मुग़लकालीन गाँवों में सामाजिक संबंधों की कल्पना एक पिरामिड के रूप में करें, तो ज़मींदार इसके संकरे शीर्ष का

© NCERT not to be republished

हिस्सा थे। अबुल फ़ज़्ल इस ओर इशारा करता है कि "ऊँची जाति" के ब्राह्मण-राजपूत गठबंधन ने ग्रामीण समाज पर पहले ही अपना ठोस नियंत्रण बना रखा था। इसमें तथाकथित मध्यम जातियों की भी ख़ासी नुमाइंदगी थी जैसा कि हमने पहले देखा है, और इसी तरह कई मुसलमान ज़मींदारों की भी।

समसामयिक दस्तावेज़ों से ऐसा लगता है कि जंग में जीत ज़मींदारों की उत्पत्ति का संभावित स्रोत रहा होगा। अकसर, ज़मींदारी फैलाने का एक तरीक़ा था ताकतवर सैनिक सरदारों द्वारा कमज़ोर लोगों को बेदखल करना। मगर इसकी संभावना कम ही है कि किसी ज़मींदार को इतने आक्रामक रुख की इजाज़त राज्य देता हो जब तक कि एक राज्यादेश (सनद) के ज़रिये इसकी पुष्टि पहले ही नहीं कर दी गई हो।

इससे भी महत्त्वपूर्ण थी ज़मींदारी को पुख्ता करने की धीमी प्रक्रिया। स्रोतों में इसके दस्तावेज़ भी शामिल हैं। ये कई तरीक़े से किया जा सकता था: नयी ज़मीनों को बसाकर (जंगल-बारी), अधिकारों के हस्तांतरण के ज़रिये, राज्य के आदेश से, या फिर खरीद कर। यही वे प्रक्रियाएँ थीं जिनके ज़रिये अपेक्षाकृत "निचली" जातियों के लोग भी ज़मींदारों के दर्जे में दाखिल हो सकते थे, क्योंकि इस काल में ज़मींदारी धड़ल्ले से खरीदी और बेची जाती थी।

एक समांतर सैनिक बल!

आइन के मुताबिक, मुग़ल भारत में ज़मींदारों की मिली-जुली सैनिक शक्ति इस प्रकार थी : 384,558 घुड़सवार; 4,277,057 पैदल; 1863 हाथी; 4260 तोप; और 4,500 नाव।

कई कारणों ने मिलकर परिवार या वंश पर आधारित ज़मींदारियों को पुख्ता होने का मौका दिया। मसलन, राजपूतों और जाटों ने ऐसी रणनीति अपनाकर उत्तर भारत में ज़मीन की बड़ी-बड़ी पट्टियों पर अपना नियंत्रण पुख्ता किया। इसी तरह मध्य और दक्षिण-पश्चिम बंगाल में किसान-पशुचारियों (जैसे, सदगोप) ने ताकतवर ज़मींदारियाँ खड़ी कीं।

ज़मींदारों ने खेती लायक ज़मीनों को बसाने में अगुआई की और खेतिहरों को खेती के साजो-सामान व उधार देकर उन्हें वहाँ बसने में भी मदद की। ज़मींदारी की खरीद-फ़रोख्त से गाँवों के मौद्रीकरण की प्रक्रिया में तेज़ी आई। इसके अलावा, ज़मींदार अपनी मिल्कियत की ज़मीनों की फ़सल भी बेचते थे। ऐसे सबूत हैं जो दिखाते हैं कि ज़मींदार अकसर बाज़ार (हाट) स्थापित करते थे जहाँ किसान भी अपनी फ़सलें बेचने आते थे।

हालाँकि इसमें कोई शक नहीं कि ज़मींदार शोषण करने वाला तबका था, लेकिन किसानों से उनके रिश्तों में पारस्परिकता, पैतृकवाद और संरक्षण का पुट था। दो पहलू इस बात की पुष्टि करते हैं। एक तो ये कि भक्ति संतों ने जहाँ बड़ी बेबाकी से जातिगत और दूसरी किस्मों के

© NCERT not to be republished

अत्याचारों की निंदा की (अध्याय 6 भी देखिए), वहीं उन्होंने ज़मींदारों को (या फिर, दिलचस्प बात है, साहूकारों को) किसानों के शोषक या उन पर अत्याचार करने वाले के रूप में नहीं दिखाया। आमतौर पर राज्य का राजस्व अधिकारी ही उनके ग़ुस्से का निशाना बना। दूसरे, सत्रहवीं सदी में भारी संख्या में कृषि विद्रोह हुए और उनमें राज्य के ख़िलाफ़ ज़मींदारों को अकसर किसानों का समर्थन मिला।

➲ चर्चा कीजिए...

आज़ादी के बाद भारत में ज़मींदारी व्यवस्था ख़त्म कर दी गई। इस अनुभाग को पढ़िए और उन कारणों की पहचान कीजिए जिनकी वजह से ऐसा किया गया।

6. भू-राजस्व प्रणाली

ज़मीन से मिलने वाला राजस्व मुग़ल साम्राज्य की आर्थिक बुनियाद थी। इस कारण से, कृषि उत्पादन पर नियंत्रण रखने के लिए और तेज़ी से फैलते साम्राज्य के तमाम इलाक़ों में राजस्व आकलन व वसूली के लिए यह ज़रूरी था कि राज्य एक प्रशासनिक तंत्र खड़ा करे। दीवान, जिसके दफ़्तर पर पूरे राज्य की वित्तीय व्यवस्था के देख-रेख की ज़िम्मेदारी थी, इस तंत्र में शामिल था। इस तरह हिसाब रखने वाले और राजस्व अधिकारी खेती की दुनिया में दाखिल हुए और कृषि संबंधों को शक्ल देने में एक निर्णायक ताकत के रूप में उभरे।

लोगों पर कर का बोझ निर्धारित करने से पहले मुग़ल राज्य ने ज़मीन और उस पर होने वाले उत्पादन के बारे में खास किस्म की सूचनाएँ इकट्ठा करने की कोशिश की। भू-राजस्व के इंतज़ामात में दो चरण थे : पहला, कर निर्धारण और दूसरा, वास्तविक वसूली। *जमा* निर्धारित रक़म थी और *हासिल* सचमुच वसूली गई रक़म। *अमील-गुज़ार* या राजस्व वसूली करने वाले के कामों की सूची में अकबर ने यह हुक्म दिया कि जहाँ उसे (अमील-गुज़ार को) कोशिश करनी चाहिए कि खेतिहर नक़द भुगतान करे, वहीं फ़सलों में भुगतान का विकल्प भी खुला रहे। राजस्व निर्धारित करते समय राज्य अपना हिस्सा ज़्यादा से ज़्यादा रखने की कोशिश करता था। मगर स्थानीय हालात की वजह से कभी-कभी सचमुच में इतनी वसूली कर पाना संभव नहीं हो पाता था।

हर प्रांत में जुती हुई ज़मीन और जोतने लायक ज़मीन दोनों की नपाई की गई। अकबर के शासन काल में अबुल फ़ज़्ल ने *आइन* में ऐसी ज़मींनों के सभी आंकड़ों को संकलित किया। उसके बाद के बादशाहों के शासनकाल में भी ज़मीन की नपाई के प्रयास जारी रहे। मसलन, 1665 ई. में, औरंगज़ेब ने अपने राजस्व कर्मचारियों को स्पष्ट निर्देश दिया कि हर गाँव में खेतिहरों की संख्या का सालाना हिसाब रखा जाए (स्रोत 7)। इसके बावजूद सभी इलाक़ों की नपाई सफलतापूर्वक नहीं हुई। जैसाकि हमने देखा है, उपमहाद्वीप के कई बड़े हिस्से जंगलों से घिरे हुए थे और इनकी नपाई नहीं हुई।

© NCERT not to be republished

अमीन एक मुलाज़िम था जिसकी ज़िम्मेवारी यह सुनिश्चित करना था कि प्रांतों में राजकीय नियम कानूनों का पालन हो रहा है।

स्रोत 5

अकबर के शासन में भूमि का वर्गीकरण

आइन में वर्गीकरण के मापदंड की निम्नलिखित सूची दी गई है:

अकबर बादशाह ने अपनी गहरी दूरदर्शिता के साथ ज़मींनों का वर्गीकरण किया और हरेक (वर्ग की ज़मीन) के लिए अलग-अलग राजस्व निर्धारित किया। *पोलज* वह ज़मीन है जिसमें एक के बाद एक हर फ़सल की सालाना खेती होती है और जिसे कभी खाली नहीं छोड़ा जाता है। *परौती* वह ज़मीन है जिस पर कुछ दिनों के लिए खेती रोक दी जाती है ताकि वह अपनी खोयी ताकत वापस पा सके। *चचर* वह ज़मीन है जो तीन या चार वर्षों तक खाली रहती है। *बंजर* वह ज़मीन है जिस पर पाँच या उससे ज़्यादा वर्षों से खेती नहीं की गई हो। पहले दो प्रकार की ज़मीन की तीन किस्में हैं, अच्छी, मध्यम और खराब। वे हर किस्म की ज़मीन के उत्पाद को जोड़ देते हैं, और इसका तीसरा हिस्सा मध्यम उत्पाद माना जाता है, जिसका एक-तिहाई हिस्सा शाही शुल्क माना जाता है।

➲ अपने अधीन इलाक़ों में ज़मीन का वर्गीकरण करते वक़्त मुग़ल राज्य ने किन सिद्धांतों का पालन किया? राजस्व निर्धारण किस प्रकार किया जाता था?

मानचित्र 1
मुग़ल साम्राज्य का विस्तार

➲ भू-राजस्व की वसूली पर साम्राज्य के विस्तार का क्या प्रभाव पड़ा?

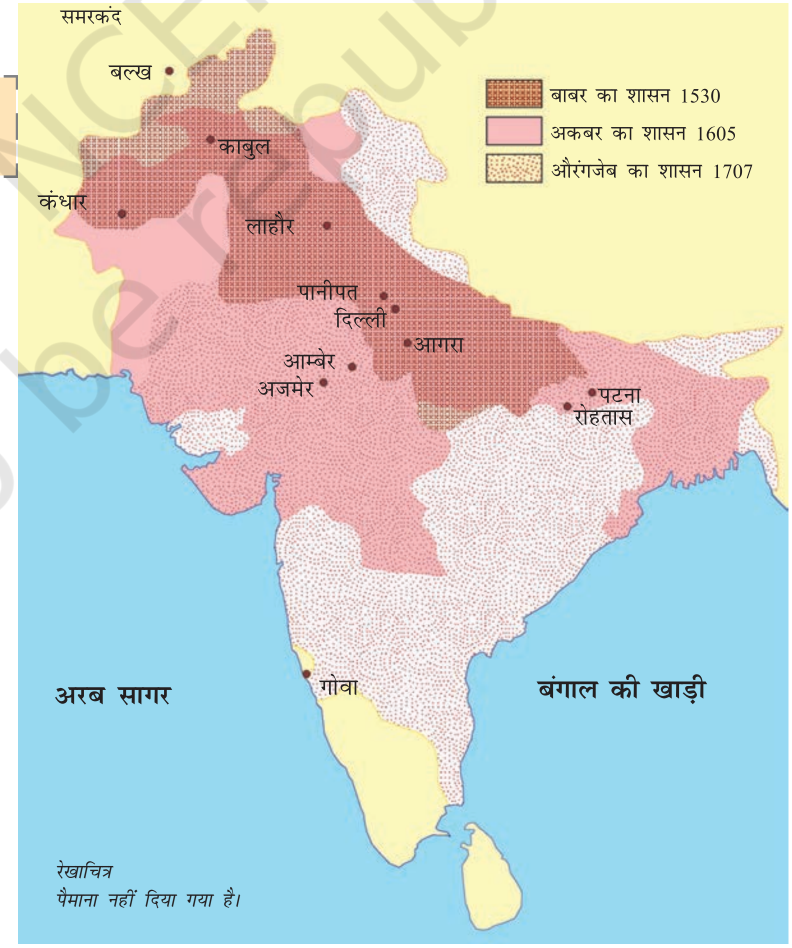

मनसबदारी व्यवस्था

मुग़ल प्रशासनिक व्यवस्था के शीर्ष पर एक सैनिक-नौकरशाही तंत्र (मनसबदारी) था जिस पर राज्य के सैनिक व नागरिक मामलों की ज़िम्मेदारी थी। कुछ मनसबदारों को नक़दी भुगतान किया जाता था, जब कि उनमें से ज़्यादातर को साम्राज्य के अलग-अलग हिस्सों में राजस्व के आबंटन के ज़रिये भुगतान किया जाता था। समय-समय पर उनका तबादला किया जाता था। अध्याय 9 देखिए।

© NCERT not to be republished

स्रोत 6

नक़द या जीन्स ?

आइन से यह एक और अनुच्छेद है:

अमील-गुज़ार सिर्फ़ नक़द लेने की आदत न डाले बल्कि फ़सल भी लेने के लिए तैयार रहे। यह बाद वाला तरीक़ा कई तरह से काम में लाया जा सकता है। पहला, *कणकुत:* हिंदी ज़ुबान में *कण* का मतलब है, अनाज, और *कुत*, अंदाज़ा ...... अगर कोई शक हो, तो फ़सल को तीन अलग-अलग पुलिंदों में काटना चाहिए– अच्छा, मध्यम और बदतर, और इस तरह शक दूर करना चाहिए। अकसर अंदाज़ से किया गया ज़मीन का आकलन भी पर्याप्त रूप से सही नतीजा देता है। दूसरा, बटाई जिसे *भाओली* भी कहते हैं (में), फ़सल काट कर जमा कर लेते हैं, और फिर सभी पक्षों की मौजूदगी में व रज़ामंदी में बँटवारा करते हैं। लेकिन इसमें कई समझदार निरीक्षकों की ज़रूरत पड़ती है; वर्ना दुष्ट-बुद्धि और मक्कार धोखेबाज़ी की नीयत रखते हैं। तीसरे, खेत बटाई जब वे बीज बोने के बाद खेत बाँट लेते हैं। चौथे, लाँग बटाई; फ़सल काटने के बाद, वे उसका ढ़ेर बना लेते हैं और फिर उसे अपने में बाँट लेते हैं, और हरेक (पक्ष) अपना हिस्सा घर ले जाता है और उससे मुनाफ़ा कमाता है।

➲ राजस्व निर्धारण व वसूली की हरेक प्रणाली में खेतिहरों पर क्या फ़र्क पड़ता होगा?

स्रोत 7

जमा

1665 ई. में अपने राजस्व अधिकारी को औरंगज़ेब के द्वारा दिये गए हुक्म का एक अंश :

वे परगनाओं के अमीनों को निर्देश दें कि वे हर गाँव, हर किसान (आसामीवार) के बावत खेती के मौजूदा हालात (मौजूदात) पता करें, और बारीकी से उनकी जाँच करने के बाद सरकार के वित्तीय हितों (किफ़ायत) व किसानों के कल्याण को ध्यान में रखते हुए *जमा* निर्धारित करें।

➲आपकी राय में बादशाह ने विस्तृत सर्वेक्षण पर क्यों ज़ोर दिया?

➲ चर्चा कीजिए...

क्या आप मुग़लों की भू-राजस्व प्रणाली को एक लचीली व्यवस्था मानेंगे?

7 चाँदी का बहाव

मुग़ल साम्राज्य एशिया के उन बड़े साम्राज्यों में एक था जो सोलहवीं व सत्रहवीं सदी में सत्ता और संसाधनों पर अपनी पकड़ मज़बूत बनाने में कामयाब रहे। ये साम्राज्य थे–मिंग (चीन में), सफ़ावी (ईरान में), और ऑटोमन (तुर्की में)। इन साम्राज्यों की राजनीतिक स्थिरता ने चीन से लेकर भूमध्य सागर तक ज़मीनी व्यापार का जीवंत जाल बिछाने में मदद की। खोजी यात्राओं से, और 'नयी दुनिया' के खुलने से यूरोप के साथ एशिया के, खास कर भारत के, व्यापार में भारी विस्तार हुआ। इस वजह से भारत के समुद्र-पार व्यापार में एक ओर भौगोलिक विविधता आई तो दूसरी ओर कई नयी वस्तुओं का व्यापार भी शुरू हो गया। लगातार बढ़ते व्यापार के

चित्र 8.11
अकबर द्वारा जारी किए गए चाँदी के रुपये की दोनों तरफ़ें

© NCERT not to be republished

चित्र 8.12
औरंगज़ेब द्वारा जारी किया गया चाँदी का रुपया

साथ, भारत से निर्यात होने वाली वस्तुओं का भुगतान करने के लिए एशिया में भारी मात्रा में चाँदी आई। इस चाँदी का एक बड़ा हिस्सा भारत की तरफ़ खिंच गया। यह भारत के लिए अच्छा था क्योंकि यहाँ चाँदी के प्राकृतिक संसाधन नहीं थे। नतीजतन, सोलहवीं से अठारहवीं सदी के बीच भारत में धातु मुद्रा–खास कर चाँदी के रुपयों–की उपलब्धि में अच्छी स्थिरता बनी रही। इसके साथ ही एक तरफ़ तो अर्थव्यवस्था में मुद्रा संचार और सिक्कों की ढलाई में अभूतपूर्व विस्तार हुआ, दूसरी तरफ़ मुग़ल राज्य को नकदी कर उगाहने में आसानी हुई।

इटली के एक मुसाफ़िर जोवान्नी कारेरी, जो लगभगर 1690 ई. में भारत से होकर गुज़रा था, ने इस बात का बड़ा सजीव चित्र पेश किया है कि किस तरह चाँदी तमाम दुनिया से होकर भारत पहुँचती थी। उसी से हमें यह भी पता चलता है कि सत्रहवीं सदी के भारत में बड़ी अद्भुत मात्रा में नकद और वस्तुओं का आदान-प्रदान हो रहा था।

चित्र 8.13
यूरोपीय बाज़ारों की माँगों को पूरा करने के लिए भारतीय उपमहाद्वीप के वस्त्र उत्पादन का एक उदाहरण

➲ चर्चा कीजिए...

पता लगाइए कि वर्तमान में आपके राज्य में कृषि उत्पादन पर कर लगाए जाते हैं या नहीं। आज की राज्य सरकारों की राजकोषीय नीतियों और मुग़ल राजकोषीय नीतियों में समानताओं और भिन्नताओं को समझाइए।

© NCERT not to be republished

स्रोत 8

भारत में चाँदी कैसे आई?

जोवान्नी कारेरी के लेख (बर्नियर के लेख पर आधारित) के निम्नलिखित अंश से हमें पता चलता है कि मुग़ल साम्राज्य में कितनी भारी मात्रा में बाहर से धन आ रहा था:

(मुग़ल) साम्राज्य की धन-संपत्ति का अंदाज़ा लगाने के लिए पाठक इस बात पर गौर करें कि दुनिया भर में बिचरने वाला सारा सोना-चाँदी आखिरकार यहीं पहुँच जाता है। ये सब जानते हैं कि इसका बहुत बड़ा हिस्सा अमेरिका से आता है, और यूरोप के कई राज्यों से होते हुए, (इसका) थोड़ा-सा हिस्सा कई तरह की वस्तुओं के लिए तुर्की में जाता है; और थोड़ा-सा हिस्सा रेशम के लिए स्मिरना होते हुए फ़ारस पहुँचता है। अब चूँकि तुर्की लोग कॉफ़ी से अलग नहीं रह सकते, जो कि ओमान और अरबिया से आती है..... (और) न ही फ़ारस, अरबिया और तुर्की (के लोग) भारत की वस्तुओं के बिना रह सकते हैं। (वे) मुद्रा की विशाल मात्रा लाल सागर पर बेबल मंडेल के पास स्थित मोचा भेजते हैं; (इसी तरह वे ये मुद्राएँ) फ़ारस की खाड़ी पर स्थित बसरा भेजते हैं;.... बाद में ये (सारी संपत्ति) जहाज़ों से इन्दोस्तान (हिंदुस्तान) भेज दी जाती है। भारतीय जहाज़ों के अलावा जो डच, अंग्रेज़ी और पुर्तगाली जहाज़ हर साल इंदोस्तान की वस्तुएँ लेकर पेगू, तानस्सेरी (म्यांमार के हिस्से), स्याम (थाइलैंड), सीलोन (श्रीलंका)... मालदीव के टापू, मोज़ाम्बीक़ और अन्य जगहें ले जाते हैं, (इन्हीं जहाज़ों को) निश्चित तौर पर बहुत सारा सोना-चाँदी इन देशों से लेकर वहाँ (हिंदुस्तान) पहुँचाना पड़ता है। वो सब कुछ, जो डच लोग जापान की खानों से हासिल करते हैं, देर-सवेर इंदोस्तान (को) चला जाता है; और यहाँ से यूरोप को जाने वाली सारी वस्तुएँ, चाहे वो फ्रांस जाएँ या इंग्लैंड या पुर्तगाल, सभी नकद में खरीदी जाती हैं, जो (नकद) वहीं (हिंदुस्तान में) रह जाता है।

8. अबुल फ़ज़्ल की *आइन-ए-अकबरी*

आइन-ए-अकबरी आँकड़ों के वर्गीकरण के एक बहुत बड़े ऐतिहासिक और प्रशासनिक परियोजना का नतीजा थी जिसका ज़िम्मा बादशाह अकबर के हुक्म पर अबुल फ़ज़्ल ने उठाया था। अकबर के शासन के बयालीसवें वर्ष, 1598 ई. में, पाँच संशोधनों के बाद, इसे पूरा किया गया। *आइन* इतिहास लिखने के एक ऐसे बृहत्तर परियोजना का हिस्सा थी जिसकी पहल अकबर ने की थी। इस परियोजना का परिणाम था *अकबरनामा* जिसे तीन जिल्दों में रचा गया। पहली दो जिल्दों ने ऐतिहासिक दास्तान पेश की। इन हिस्सों पर हम अध्याय 9 में ज़्यादा करीबी नज़र डालेंगे। तीसरी जिल्द, *आइन-ए-अकबरी*, को शाही नियम कानून के सारांश और साम्राज्य के एक राजपत्र की सूरत में संकलित किया गया था।

आइन कई मसलों पर विस्तार से चर्चा करती है : दरबार, प्रशासन और सेना का संगठन; राजस्व के स्रोत और अकबरी साम्राज्य के प्रांतों का भूगोल; और लोगों के साहित्यिक, सांस्कृतिक व धार्मिक रिवाज। अकबर की सरकार के तमाम विभागों और प्रांतों (सूबों) के बारे में

© NCERT not to be republished

चित्र 8.14
अबुल फ़ज़्ल अपने आश्रयदाता को अकबरनामा *की पांडुलिपि पेश कर रहे हैं*

विस्तार से जानकारी देने के अलावा, *आइन* इन सूबों के बारे में *पेचीदे* और आँकड़ेबद्ध सूचनाएँ बड़ी बारीकी के साथ देती है।

इन सूचनाओं को इकट्ठा करके, उन्हें सिलसिलेवार तरीक़े से संकलित करना एक महत्त्वपूर्ण शाही कवायद थी। इसने बादशाह को साम्राज्य के तमाम इलाकों में प्रचलित रिवाजों और पेशों की जानकारी दी। इस तरह हमारे लिए *आइन* अकबर के शासन के दौरान मुग़ल साम्राज्य के बारे में सूचनाओं की खान है। फिर भी यह ध्यान रखना महत्त्वपूर्ण है कि *आइन* का नज़रिया क्षेत्रों के बारे में केंद्र का नज़रिया है, या यूँ कहें कि समाज के शीर्ष से देखी हुई समाज की तसवीर।

आइन पाँच भागों (*दफ़्तर*) का संकलन है जिसके पहले तीन भाग प्रशासन का विवरण देते हैं। *मंज़िल-आबादी* के नाम से पहली किताब शाही घर-परिवार और उसके रख-रखाव से ताल्लुक रखती है। दूसरा भाग, *सिपह-आबादी* सैनिक व नागरिक प्रशासन और नौकरों की व्यवस्था के बारे में है। इस भाग में शाही अफ़सरों (मनसबदार), विद्वानों, कवियों और कलाकारों की संक्षिप्त जीवनियाँ शामिल हैं।

तीसरा, *मुल्क-आबादी*, वह भाग है जो साम्राज्य व प्रांतों के वित्तीय पहलुओं तथा राजस्व की दरों के आँकड़ों की विस्तृत जानकारी देने के बाद "बारह प्रांतों का बयान" देता है। इस खंड में सांख्यिकी सूचनाएँ तफ़सील से दी गई हैं, जिसमें सूबों और उनकी तमाम प्रशासनिक व वित्तीय इकाइयों (सरकार, परगना और महल) के भौगोलिक, स्थलाकृतिक और आर्थिक रेखाचित्र भी शामिल हैं। इसी खंड में हर प्रांत और उसकी अलग-अलग इकाइयों की कुल मापी गई ज़मीन और निर्धारित राजस्व (*जमा*) भी दी गई हैं।

सूबा स्तर की विस्तृत जानकारी देने के बाद, *आइन* हमें *सूबों* के नीचे की इकाई *सरकारों* के बारे में विस्तार से बताती है। ये सूचनाएँ तालिकाबद्ध तरीके से दी गई हैं, जहाँ हर तालिका में आठ ख़ाने हैं जो हमें निम्नलिखि सूचनाएँ देते हैं : (1) *परगनात/महल;* (2) *क़िला;* (3) *अराज़ी* और *जमीन-ए-पाईमूद* (मापे गए इलाके); (4) *नक़दी* (नक़द निर्धारित राजस्व); (5) *सुयूरग़ल* (दान में दिया गया राजस्व अनुदान); (6) ज़मींदार; ख़ाने 7 और 8 में ज़मींदारों की जातियाँ और उनके घुड़सवार, पैदल सिपाही *(प्यादा)* व हाथी *(फ़ील)* सहित उनके फ़ौज की जानकारी दी गई है। *मुल्क-आबादी* उत्तर भारत के कृषि समाज का विस्तृत, आकर्षक व पेचीदा चित्र पेश करती है। चौथी और पाँचवीं किताबें *(दफ़्तर)* भारत के लोगों के मज़हबी, साहित्यिक और सांस्कृतिक रीति-रिवाजों से ताल्लुक रखती हैं; इनके आखिर में अकबर के "शुभ वचनों" का एक संग्रह भी है।

स्रोत 9

"खुशकिस्मती के गुलाब बाग की सिंचाई"

नीचे दिये गए अंश में अबुल फ़ज़्ल ने बड़े साफ़ तौर पर ये खुलासा किया है कि उसने कैसे और किनसे अपनी सूचनाएँ हासिल कीं:

...अबुल फ़ज़्ल, वल्द मुबारक... को यह शानदार हुक्म दिया गया, "शानदार घटनाओं और राज्य-क्षेत्र अधीन करने वाली हमारी फ़तहों की दास्तान ईमानदारी के कलम से लिखो..."। तसल्ली से, मैंने काफ़ी खोजबीन और मिहनत करके महामहिम की गतिविधियों के सबूत और दस्तावेज़ इकट्ठे किए और बहुत समय तक राज्य के मुलाज़िमों व शाही परिवार के सदस्यों के साथ जवाब तलब किया। मैंने सच बोलने वाले समझदार बुज़ुर्गों और फ़ुर्तीले दिमाग वाले, सत्यकर्मी जवानों दोनों (की बातों) को परखा, और उनके बयानों को लिखित रूप से दर्ज किया। सूबों को शाही हुक्म जारी किया गया कि पुराने मुलाज़िमों में जिस किसी को बीते वक्त की घटनाएँ याद हों, पूरे विश्वास के साथ या मामूली शक के साथ (भी), वे अपने संस्मरण को लिखें और उसे दरबार भेज दें, (फिर) उस पाक-मौजूदगी के कक्ष से एक और हुक्म रौशन हुआ; वो ये, कि जो सामग्री जमा की जाए... उसे शाही मौजूदगी में पढ़कर सुनाया जाए, और बाद में जो कुछ भी लिखा जाना हो, उसे उस महान किताब में परिशिष्ट की शक्ल में जोड़ दिया जाए, और ये कि ऐसे ब्योरे जो जाँच-पड़ताल की बारीकियों की वजह से, या मामले की बारीकियों की वजह से, उसी समय अंजाम तक नहीं लाए जा सके, उन्हें मैं बाद में दर्ज करूँ।

ईश्वरी अध्यादेश का खुलासा करने वाले इस शाही हुक्म (की वजह) से अपनी गुप्त फ़िक्र से राहत पाकर, मैंने ऐसे कच्चे प्रारूप लिखने की शुरुआत की, जिसमें शैली या विन्यास की ख़ूबसूरती नहीं थी। मैंने इलाही संवत के उन्नीसवें साल से – जब महामहिम की दानिशमंद अक्ल से दस्तावेज़ दफ़्तर स्थापित किया गया था – घटनाओं का इतिहासवृत्त हासिल किया, और उसके भरे-पूरे पन्नों से मैंने कई मामलों का ब्योरा पाया। काफ़ी तकलीफ़ें उठाकर उन सभी हुक्मों की मूल प्रति या नकल हासिल की गई जो राज्याभिषेक से लेकर आज तक सूबों को जारी किए गए थे। काफ़ी दिक्कतों का सामना करते हुए, मैंने उनमें से कई रिपोर्टों को भी शामिल किया जो साम्राज्य के विभिन्न मामलों या दूसरे देशों में घटी घटनाओं के बारे में थीं और जिन्हें ऊँचे अफ़सरों और मंत्रियों ने भेजा था। और जवाबतलब व खोजबीन के तंत्र से मेरी मिहनतपसंद रूह संतृप्त हो गई। बड़ी कर्मठता के साथ मैंने वे कच्चे मसौदे व ज्ञापनपत्र भी हासिल किए जो जानकार और दूरदर्शी लोगों ने लिखे थे। इन तरीकों से खुशकिस्मती के इस गुलाब बाग *(अकबरनामा)* को सींचने और नमी देने के लिए मैंने हौज़ बनाया।

➲ उन सभी स्रोतों की सूची बनाएँ जिनका इस्तेमाल अबुल फ़ज़्ल ने अपनी किताब पूरी करने के लिए किया। कृषि संबंधों को समझने के लिए इनमें से कौन से स्रोत सबसे उपयोगी होते? आपके मुताबिक किस हद तक अबुल फ़ज़्ल की किताब अकबर से उसके रिश्ते से प्रभावित हुई होगी?

आइन का अनुवाद

आइन की अहमियत की वजह से, कई विद्वानों ने इसका अनुवाद किया। हेनरी ब्लॉकमेन ने इसे संपादित किया और कलकत्ता (आज का कोलकाता) के एशियाटिक सोसाइटी ने अपनी बिब्लियोथिका श्रृंखला में इसे छापा। इस किताब का तीन खंडों में अंग्रेज़ी अनुवाद भी किया गया। पहले खंड का मानक अंग्रेज़ी अनुवाद ब्लॉकमेन का है (कलकत्ता, 1873), बाकी के दो खंडों के अनुवाद एच. एस. जैरेट ने किए (कलकत्ता, 1891 और 1894)।

हालाँकि बादशाह अकबर के शासन की सहूलियत के लिए *आइन* को आधिकारिक तौर पर विस्तृत सूचनाएँ जमा करने के लिए प्रायोजित किया गया था, फिर भी यह किताब आधिकारिक दस्तावेज़ों की महज नकल से कहीं बढ़ कर थी। हम जानते हैं कि इसकी पांडुलिपि को लेखक द्वारा पाँच बार संशोधित किया गया। इससे ऐसा लगता है कि प्रामाणिकता की खोज में अबुल फ़ज़्ल काफ़ी सावधानी बरत रहे थे। उदाहरण के तौर पर, मौखिक बयानों को तथ्य के रूप में किताब में शामिल करने से पहले, अन्य स्रोतों से उसकी असलियत और सच्चाई की पुष्टि करने की कोशिश की जाती थी। सांख्यिकी वाले खंडों में सभी आँकड़ों को अंकों के साथ शब्दों में भी लिखा गया ताकि बाद की प्रतियों में नकल की गलतियाँ कम से कम हों।

फिर भी जिन इतिहासकारों ने ध्यान से *आइन* का अध्ययन किया, वे बताते हैं कि यह ग्रंथ पूरी तरह समस्याओं से परे नहीं है। जोड़ करने में कई ग़लतियाँ पाई गई हैं। ऐसा माना जाता है कि या तो ये अंकगणित की छोटी-मोटी चूक है या फिर नकल उतारने के दौरान अबुल फ़ज़्ल के सहयोगियों की भूल। आमतौर पर ये ग़लतियाँ मामूली हैं और एक व्यापक स्तर पर किताबों के आंकड़ों की सच्चाई को कम नहीं करतीं।

आइन की एक और सीमा यह है कि इसके संख्यात्मक आँकड़ों में विषमताएँ हैं। सभी सूबों से आँकड़े एक ही शक्ल में नहीं एकत्रित किए गए। मसलन, जहाँ कई सूबों के लिए ज़मींदारों की जाति के मुतलिक विस्तृत सूचनाएँ संकलित की गईं, वहीं बंगाल और उड़ीसा के लिए ऐसी सूचनाएँ मौजूद नहीं हैं। इसी तरह, जहाँ सूबों से लिए गए राजकोषीय आँकड़े बड़ी तफ़सील से दिए गए हैं, वहीं उन्हीं इलाकों से कीमतों और मज़दूरी जैसे इतने ही महत्त्वपूर्ण मापदंड इतने अच्छे से दर्ज़ नहीं किए गए हैं। कीमतों और मज़दूरी की दरों की जो विस्तृत सूची *आइन* में दी भी गई है वह साम्राज्य की राजधानी आगरा या उसके इर्द-गिर्द के इलाकों से ली गई है। ज़ाहिर है कि देश के बाकी हिस्सों के लिए इन आँकड़ों की प्रासंगिकता सीमित है।

इन सीमाओं के बावजूद, आइन अपने समय के लिए एक असामान्य व अनोखा दस्तावेज़ है। मुग़ल साम्राज्य के गठन और उसकी संरचना को मंत्र-मुग्ध करने वाली झलकियाँ दिखाकर और उसके बाशिंदों व उत्पादों के बारे में सांख्यिकीय आँकड़े देकर, अबुल फ़ज़्ल मध्यकालीन इतिहासकारों की अब तक प्रचलित परंपराओं से कहीं आगे निकल गए और यह निश्चित तौर पर एक बड़ी उपलब्धि थी। गौरतलब है कि मध्यकालीन भारत में अबुल फ़ज़्ल से पहले के इतिहासकार ज़्यादातर राजनीतिक वारदातों के बारे में ही लिखते थे-जंग, फ़तह, सियासी साज़िशें, या

© NCERT not to be republished

वंशीय उथल-पुथल। देश, उसके लोग या उत्पादों का ज़िक्र गाहे बगाहे प्रसंगवश ही आता था और वह भी एक ऐसे लेख "साज-सज्जा" के रूप में जिसकी दिशा मूलत: राजनीतिक होती थी।

भारत के लोगों और मुगल साम्राज्य के बारे में विस्तृत सूचनाएँ दर्ज करके *आइन* ने स्थापित परंपराओं को पीछे छोड़ दिया और इस तरह सत्रहवीं सदी के मुहाने पर भारत के अध्ययन के लिए एक संदर्भ बिंदु बन गया। जहाँ तक कृषि संबंधों का सवाल है, *आइन* के सांख्यिकीय सबूतों की अहमियत चुनौतियों के परे है। लेकिन इससे भी महत्त्वपूर्ण, लोगों, उनके पेशों और व्यवसायों, साम्राज्य की व्यवस्था और उसके उच्चाधिकारियों के बारे में जो सूचनाएँ यह ग्रंथ मुहैया कराता है, उनकी मदद से इतिहासकार समकालीन भारत के सामाजिक ताने-बाने का इतिहास पुन: रचते हैं।

काल रेखा
मुग़ल साम्राज्य के इतिहास के मुख्य पड़ाव

1526	दिल्ली के सुलतान, इब्राहिम लोदी को पानीपत में हराकर बाबर पहला मुग़ल बादशाह बनता है
1530-40	हुमायूँ के शासन का पहला चरण
1540-55	शेरशाह से हार कर हुमायूँ सफ़ावी दरबार में प्रवासी बन कर रहता है
1555-56	हुमायूँ खोये हुए राज्य को फिर से हासिल करता है
1556-1605	अकबर का शासन काल
1605-27	जहाँगीर का शासन काल
1628-58	शाहजहाँ का शासन काल
1658-1707	औरंगज़ेब का शासन काल
1739	नादिरशाह भारत पर आक्रमण करता है और दिल्ली को लूटता है
1761	अहमद शाह अब्दाली पानीपत के तीसरे युद्ध में मराठों को हराता है
1765	बंगाल के दीवानी अधिकार ईस्ट इंडिया कंपनी को सौंप दिये जाते हैं
1857	अंतिम मुग़ल बादशाह बहादुर शाह ज़फ़र को अंग्रेज़ गद्दी से हटा देते हैं और देश निकाला देकर रंगून (आज का यांगोन, म्यांमार में) भेज देते हैं।

© NCERT not to be republished

उत्तर दीजिए (लगभग 100 से 150 शब्दों में)

1. कृषि इतिहास लिखने के लिए *आइन* को स्रोत के रूप में इस्तेमाल करने में कौन सी समस्याएँ हैं? इतिहासकार इन समस्याओं से कैसे निपटते हैं?
2. सोलहवीं-सत्रहवीं सदी में कृषि उत्पादन को किस हद तक महज़ गुज़ारे के लिए खेती कह सकते हैं? अपने उत्तर के कारण स्पष्ट कीजिए।
3. कृषि उत्पादन में महिलाओं की भूमिका का विवरण दीजिए।
4. विचाराधीन काल में मौद्रिक कारोबार की अहमियत की विवेचना उदाहरण देकर कीजिए।
5. उन सूबतों की जाँच कीजिए जो ये सुझाते हैं कि मुग़ल राजकोषीय व्यवस्था के लिए भू-राजस्व बहुत महत्त्वपूर्ण था।

निम्नलिखित पर एक लघु निबंध लिखिए (लगभग 250-300 शब्दों में)

6. आपके मुताबिक कृषि समाज में सामाजिक व आर्थिक संबंधों को प्रभावित करने में जाति किस हद तक एक कारक थी?
7. सोलहवीं और सत्रहवीं सदी में जंगल वासियों की ज़िंदगी किस तरह बदल गई?
8. मुग़ल भारत में ज़मींदारों की भूमिका की जाँच कीजिए।
9. पंचायत और गाँव का मुखिया किस तरह से ग्रामीण समाज का नियमन करते थे? विवेचना कीजिए।

चित्र 8.15
सुनारों को दर्शाते हुए सत्रहवीं शताब्दी का चित्र

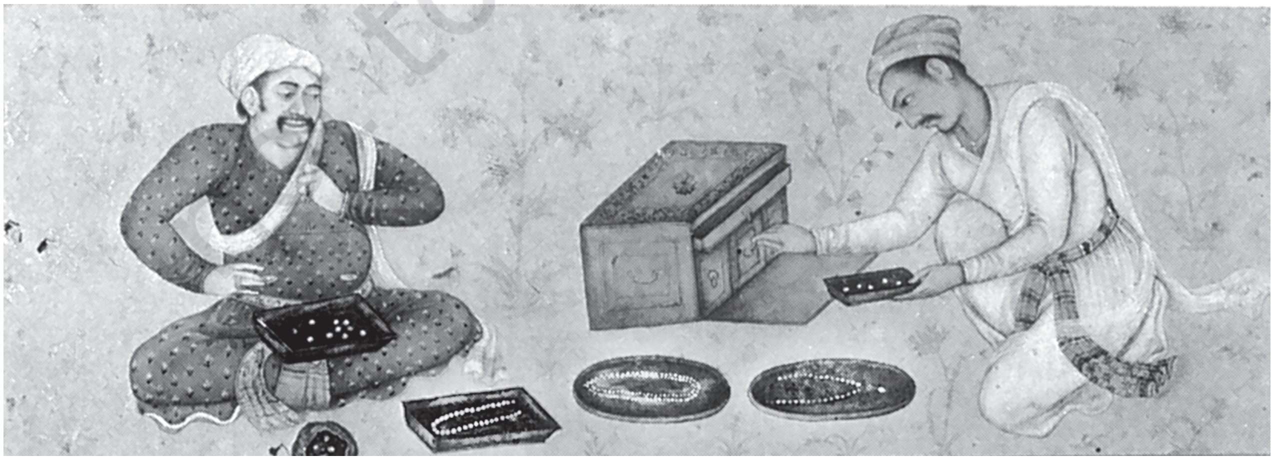

© NCERT not to be republished

मानचित्र कार्य

10. विश्व के बहिर्रेखा वाले नक्शे पर उन इलाकों को दिखाएँ जिनका मुग़ल साम्राज्य के साथ आर्थिक संपर्क था। इन इलाकों के साथ यातायात-मार्गों को भी दिखाएँ।

परियोजना कार्य (कोई एक)

11. पड़ोस के एक गाँव का दौरा कीजिए। पता कीजिए कि वहाँ कितने लोग रहते हैं, कौन सी फ़सलें उगाई जाती हैं, कौन से जानवर पाले जाते हैं, कौन से दस्तकार समूह रहते हैं, महिलाएँ ज़मीन की मालिक हैं या नहीं, और वहाँ की पंचायत किस तरह काम करती है। जो आपने सोलहवीं-सत्रहवीं सदी के बारे में सीखा है उससे इस सूचना की तुलना करते हुए, समानताएँ नोट कीजिए। परिवर्तन और निरंतरता दोनों की व्याख्या कीजिए।

12. *आइन* का एक छोटा सा अंश चुन लीजिए (10 से 12 पृष्ठ, दी गई वेबसाइट पर उपलब्ध)। इसे ध्यान से पढ़िए और इस बात का ब्योरा दीजिए कि इसका इस्तेमाल एक इतिहासकार किस तरह से कर सकता है?

चित्र 8.16
मिठाई बेचती हुई महिला

यदि आप और जानकारी चाहते हैं तो इन्हें पढ़िए:

सुमित गुहा, 1999
एनवायरनमेंट एंड एथिनीसिटी इन इंडिया, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज

इरफान हबीब, 1999
द *अग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुग़ल इंडिया 1556-1707* (सेकंड एडिशन), ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यू दिल्ली

डब्ल्यू.एच. मोरलेंड, 1983 (पुनर्मुद्रण)
इंडिया एट द डेथ ऑफ अकबर: एन इकोनॉमिक स्टडी
ओरियंटल, न्यू दिल्ली

तपन रायचौधरी एंड इरफान हबीब (संपा.), 2004, द *कैम्ब्रिज इकोनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया, वोल्यूम 1,* ओरियंट लोंगमैन, न्यू दिल्ली

डीटमर रोथरमंड, 1993
एन इकोनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया–फ्रॉम प्री-कोलोनियल टाइम्स टू 1991, राउटलेज, लंदन

संजय सुब्रह्मण्यम (संपा.), 1994
मनी एंड दि मार्केट इन इंडिया 1100-1700
ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस
न्यू दिल्ली

अधिक जानकारी के लिए आप निम्नलिखित वेबसाइट देख सकते हैं
http://persian.packhum.orgpersianindex.jsp?serv=pf&file=00702053&ct=0

© NCERT not to be republished